आपने लिखा

'बुन्सन बर्नर के बीच छह इंच जगह' पढ़कर कुछ विशेष अनुभूति हुई। एक बात जो साफतौर पर सामने आई कि लेखक को शिक्षकों से कुछ तो जानकारी मिली, चाहे वह सही थी या गलत – यह और बात है।

हमारे आसपास के स्कूलों में तो कुछ शिक्षक छात्रों को सामान्य-सी जानकारी भी नहीं देते। जैसे कि कई छात्रों का कहना है कि पौधे दिन में केवल प्रकाश संश्लेषण की क्रिया ही करते हैं और रात में केवल श्वसन करते हैं। यदि कोई छात्र शिक्षक से पूछता है कि अगर श्वसन क्रिया न हो पाए तो मृत्यु हो जाती है फिर पौधे प्रकाश संश्लेषण क्रिया के दौरान इतने लंबे समय तक श्वसन न कर पाने के बाद भी क्यों नहीं मरते? क्या यह संभव नहीं कि प्रकाश संश्लेषण और श्वसन की क्रिया साथ-साथ चलती रहे? प्रत्युत्तर में उन्हें केवल झिड़कियां ही मिलती हैं। हाई स्कूल के छात्रों की जुबानी यह बातें सुनकर दुःख होता है।

कविता शर्मा
सरस्वती विद्या मंदिर
उच्च. माध्य. विद्यालय, हरदा, म. प्र.

मैं सातवीं का छात्र हूं। एक मित्र ने संदर्भ पत्रिका के बारे में बताया। मैंने पत्रिका पढ़ी लेकिन 'संदर्भ' शब्द का अर्थ नहीं समझ पाया। वैसे पत्रिका हमारे लिए नहीं है क्योंकि इसमें विज्ञान की उच्च स्तरीय सामग्री होती है।

कैलाश हरियाले
हिरनखेड़ा
ज़िला होशंगाबाद, म. प्र.

दसवां अंक पढ़ा। 'हाऊ चिल्ड्रन लर्न' के हिन्दी रूपांतरित अंश के लिए सुशील जोशी को धन्यवाद। ज़रा सिर खुजलाइए में 'क्यों नहीं कटी बर्फ' काफी रोमांचक सवाल था। विजय शंकर वर्मा का लेख 'गणक से गणित की समझ' वास्तव में गणित जैसे उबाऊ समझे जाने वाले विषय पर विस्तृत चर्चा व खुला पक्ष रखे जाने की दिशा में प्रयासरत कदम था। उन्हें साधुवाद।

कुछ उर्दू या अन्य भाषाई शब्दों के तुरंत बाद कोष्ठक में उसका अर्थ लिख दिया जाए तो लेखों को समझने में दिक्कत नहीं होगी। यदि पत्रिका की कुछेक सामग्री का चयन शिक्षक स्तर से हटकर बाल स्तर से किया तो पत्रिका बच्चों के लिए भी ज्ञान-विज्ञान का आदर्श बन जाएगी।

मेरा एक और सुझाव है कि हर अंक में एक स्थाई स्तम्भ रखा जाए जिसमें किसी वैज्ञानिक की जीवनी दी जाए, ताकि जुझारू वैज्ञानिक के बारे में पढ़कर सभी समझ सकें कि वैज्ञानिक जीवन कैसा होता है।

चम्पालाल कुशवाहा 'विजय'
हिरनखेड़ा, ज़िला होशंगाबाद

संदर्भ विज्ञान शिक्षण की एक मात्र सम्पूर्ण पत्रिका है। इसमें विज्ञान की बातें एकदम सटीक होती हैं। मैं यह पत्र 'गूलर के फूल क्यों नहीं दिखते?' के संबंध में डी. एन. मिश्रराज के लेख पर भेज रहा हूं।

मुझे लगता है कि श्री मिश्रराज के पत्र की जो भाषा है वह दसवीं के छात्रों के लिए अनसुलझी है। कृपया इसका सरल

भाषा में रूपांतरण कर पुनः समझाने की कृपा करें, क्योंकि यह लेख छात्रों के लिए काफी फायदेमंद है। मेरी एक और फरमाइश है कि संदर्भ के प्रकाशन और सम्पादन में सहयोग देने वालों का पूर्ण परिचय दीजिए।

बलदेव जुमनानी, कक्षा दसवीं
साधु वासवाणी विद्या मंदिर
होशंगाबाद, म. प्र.

संदर्भ पढ़ने को मिली,पढ़कर प्रसन्नता हुई कि होशंगाबाद मे एक उच्चस्तरीय पत्रिका निकल रही है। नवंबर 95-फरवरी 96 के अंक में – 'यूं बनी एक कहानी', 'संकेत मूत्र और संगठन', 'किसमें प्रोटीन, कहां वसा' आदि लेख अच्छे लगे।

रामकृष्ण जामेरिया, गली न. 6, हरदा

कुछ इंतज़ार तो अवश्य कराती है संदर्भ, किन्तु कहावत है न कि 'इंतज़ार का फल मीठा होता है.....।' वे बारीकियां जिन्हें हम शैक्षिक जीवन में नहीं जान पाए, इसमें मिलती हैं ..... उम्मीद है कि मिलती भी रहेंगी। प्रत्येक अंक में किसी वैज्ञानिक की जीवनी भी दी जाए तो अच्छा रहेगा।

संजय ओसवाल
ओसवाल मेडिकल, विजयनगर
अजमेर, राजस्थान

प्रतिरक्षा कोशिका: 'स्वयं' को नहीं पहचान सकती

पिछले अंक (मार्च-अप्रैल 1996) में विनीता बाळ एवं सत्यजित रथ के लेख 'प्रतिरक्षा तंत्र बनाम सुरक्षा प्रणाली' में पृष्ठ 28-29 पर दिया गया बॉक्स उस लेख का हिस्सा नहीं था।

इस बॉक्स में निरूपित प्रक्रियाओं में कई त्रुटियां हैं। उन्हें सुधारते हुए प्रतिरक्षा तंत्र के बारे में हमारी आज तक की समझ का संक्षिप्त वर्णन यहां पर दिया जा रहा है।

इस गलती के लिए हमें खेद है। विशेष तौर पर इसलिए भी क्योंकि विनीता बाळ और सत्यजित रथ का नाम इस त्रुटिपूर्ण बॉक्स के साथ जुड़ गया।

संपादक मंडल

1. कोई भी श्वेत रक्त कोशिका 'स्वयं' यानी 'उसी जीव की अन्य कोशिकाओं' को नहीं पहचान सकती। 'स्वयं' को पहचानने वाली सब श्वेत रक्त कोशिकाएं अपने विकास (Maturation) के दौरान या तो मर जाती हैं या अक्रियाशील हो जाती हैं।

   जब श्वेत रक्त कोशिकाएं स्वयं को ही नहीं पहचान सकतीं तो उनके द्वारा 'स्वयं-स्वयं' में विभेद कर पाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

2. अन्य की पहचान:

   (क) जब कोई घुसपैठिया शरीर में घुस जाता है तो कोई बीटा-श्वेत रक्त कोशिका उसे पहचानकर एंटीबॉडी को स्त्रावित करती है जो घुसपैठिए से भिड़कर उसे आक्रमण करने से रोकते हैं।

   (ख) अगर घुसपैठिया किसी कोशिका के अंदर छिप जाए तो घुसपैठिए का कोई

संक्रमित कोशिका को मारना
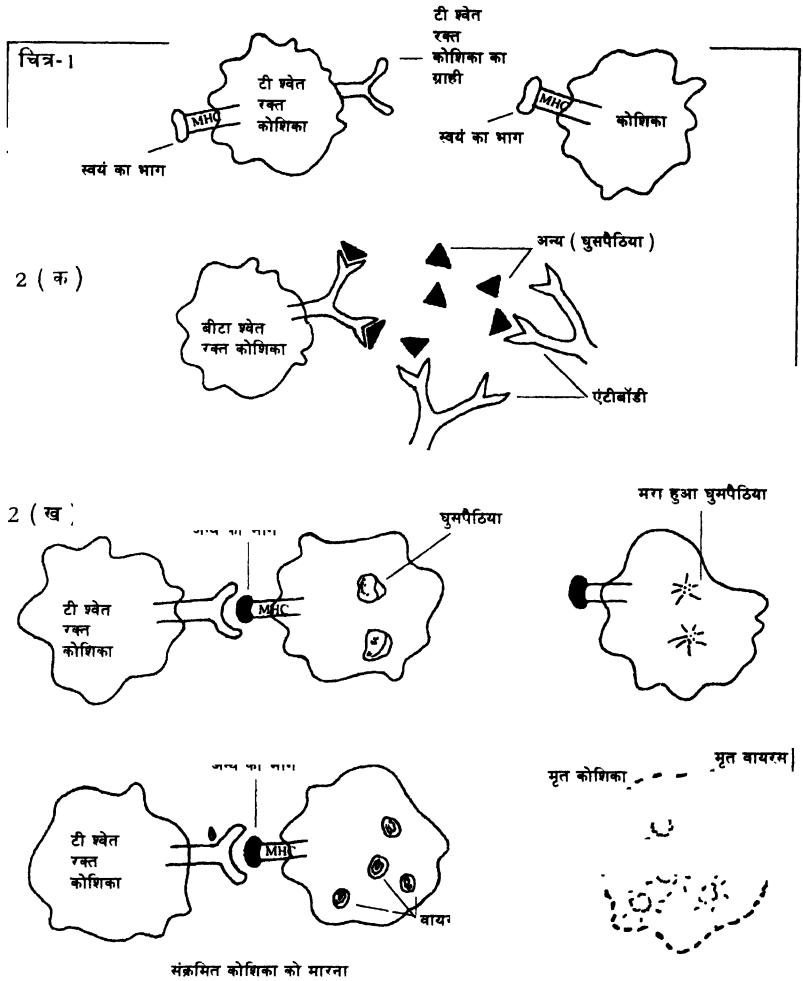
हिस्सा उस कोशिका के एम. एच. सी. अणु पर चित्र में दिखाए मुताबिक बंध जाता है। जिसे टी-श्वेत रक्त कोशिका अपने ग्राही से पहचान लेती है और क्रियाशील हो उठती है। ऐसा होने पर प्रतिरक्षा तंत्र दो तरह से कदम उठाता है:

– कुछ पदार्थ स्त्रावित करके घुसपैठिए को मारने के लिए कोशिका को ताकत प्रदान करता है। अथवा,

– उस कोशिका को मार देता है जिससे अंदर का घुसपैठिया भी मर जाता है।

गूलर के फूल क्यों नहीं दिखते?

संदर्भ का सातवां अंक (सितम्बर-अक्टूबर 95), लम्बे समय तक बाहर रहकर लौटने पर, अभी-अभी मिला।

मेरा सुझाव है कि 'सवालीराम' के तहत उत्तर एकदम सटीक एवं संक्षिप्त होने चाहिए। अगर विस्तार से उत्तर देना हो तो एकदम प्रामाणिक एवं सही होना चाहिए। मैं यह 'गूलर के फूल क्यों नहीं दिखते' के उत्तर विशेष के संदर्भ में लिख रहा हूं। इसका उत्तर मात्र होना चाहिए था – गूलर के फूल सामान्य अर्थ में इसलिए दिखाई नहीं देते क्योंकि इसके फूल एक विशेष इनफ्लोरेसेंस (पुष्पक्रम) हाईपेन्थोडियम पर लगते हैं, जो एक छोटे-से मुंह वाली लुटिया की तरह कप-केपीटुलम (सूरजमुखी वर्ग के पुष्पक्रम) जैसा होता है। इस पुष्पक्रम में [illegible] इन

कहने को बहार तो आती है मगर...

गूलर के फूल क्यों नहीं दिखते

संदर्भ के मातवें अंक में हमने एक बच्चे के सवाल – गूलर के फूल क्यों नहीं दिखते – का जवाब दिया था। उस जवाब की कुछ अस्पष्टताओं एवं गलतियों की ओर डॉ. डी. एन. मिश्रराज ने हमारा ध्यान दिलाया था। उनका पत्र हमने संदर्भ के दसवें अंक में प्रकाशित किया था। परन्तु मामला यहीं खत्म नहीं होता। इस बार डॉ. भोलेश्वर दुबे एवं किशोर पंवार ने कई नए तथ्य जोड़ते हुए गूलर के फूल पर चल रही इस चर्चा को और आगे बढ़ाया है।

संभव है कि इन सब प्रयासों के बाद भी गूलर के फूल को लेकर कुछ बातें छूट गई हों क्योंकि अक्सर पुस्तकों में अंजीर के फूल का विस्तृत विवरण दिया होता है, गूलर का खास कोई ज़िक्र नहीं होता। क्योंकि अंजीर, गूलर, पीपल, बरगद ये सब एक ही तरह के पेड़ हैं इसलिए मान लिया जाता है कि इन सबके साथ एक-सी क्रियाएं हो रही होंगी। इसलिए यदि गूलर विशेष के फूल के संबंध में आपके पास कोई जानकारी हो तो आप भी इस बहस में शामिल हो सकते हैं।

- सपादक मडल

संदर्भ के सातवें अंक में गूलर के फूल के बारे में छपे जवाब की शुरुआत ही ठीक नहीं है। लिखा है कि 'गूलर में भी अन्य पेड़ पौधों की तरह फूल लगते हैं'। यह कथन उचित नहीं है, यदि ऐसा होता तो फिर परेशानी ही क्या थी! दरअसल गूलर को लेकर सारे भ्रम, सारी उत्सुकता इसी वजह से है कि न तो इसमें गुड़हल और गुलाब की तरह रंग-बिरंगी पंखुड़ियों वाले फूल लगते

हैं, न ही आम और जामुन की तरह फल।

यूं तो गूलर के फूल, फल और पुष्पक्रम तीनों ही विशिष्ट हैं जो इसे रहस्यमयी बनाते हैं, जिनके चलते जन सामान्य में भी कई रोचक एवं आश्चर्य-जनक भ्रम फैले हैं। जैसे 'गूलर के फूल पूर्णमासी की रात को ही खिलते हैं' और 'भाग्यशाली लोगों को ही दिखाई देते हैं'। गूलर के फूल को लेकर एक कहानी मैंने भी बचपन में पढ़ी थी जिसमें राजा अपनी राजकुमारी की शादी उस व्यक्ति से करने का प्रस्ताव रखता है जो उसे गूलर का फूल लाकर दे! कहने का मतलब यह है कि गूलर का फूल अपने-आप में सदियों से लोगों की उत्सुकता का विषय रहा है। यह सवाल आपने 'संदर्भ' में उठाया इसके लिए धन्यवाद।

परन्तु संदर्भ के अंक सात में दिए गए जवाब में कई कमियां थी जिनका ज़िक्र डॉ. डी. एन. मिश्रराज ने अपने पत्र में किया है। उनके खत में याददाश्त के आधार पर दिए गए विस्तृत विवरण में कुछ बातें अभी भी ऐसी हैं जो वर्तमान में उपलब्ध जानकारी से मेल नहीं खाती। मसलन उन्होंने पुंकेसर और स्त्रीकेसर वाले फूलों के बारे में लिखा है – ''ये एक साथ पास-पास नहीं होते।'' और साथ ही यह भी कहा है कि सच्चे स्त्री पुष्प, खोटे स्त्री पुष्प और नर पुष्प अलग-अलग पुष्पक्रमों (गूलर की गेंदनुमा रचना) में ही लगते हैं। जबकि हकीकत यह है कि गूलर में तीन प्रकार के पुष्पक्रम (गेंदनुमा रचनाएं) तो होते हैं परन्तु उनमें एक से ज़्यादा किस्म के फूल पाए जाते हैं।

1. एक पुष्पक्रम में नर पुष्प और खोटे मादा पुष्प।
2. दूसरे पुष्पक्रम में सच्चे स्त्री पुष्प व खोटे स्त्री पुष्प।
3. तीसरे पुष्पक्रम में केवल सच्चे स्त्री पुष्प।

पहले प्रकार के पुष्पक्रम में मुंह की ओर नर पुष्प और नीचे खोटे मादा पुष्प लगे होते हैं। ऐसा वर्णन रोजर ग्राउन्ड्स ने अपनी पुस्तक में दिया है।

मादा पुष्पों में वर्तिका (मादा पुष्प का तन्तुनुमा हिस्सा जिस पर परागकण चिपकते हैं और अंकुरित होते हैं) की लम्बाई में अंतर होता है। खोटे मादा पुष्पों की वर्तिका छोटी होती है जबकि असली मादा पुष्पों की वर्तिका लम्बी होती है। यही कारण है कि मादा बर्र (ब्लास्टोफैगा) का अण्डे जमा करने वाला उपकरण (ओवीपोज़िटर) इन फूलों के अण्डाशय तक नहीं पहुंच पाता, अतः वह अपने अण्डे असली मादा पुष्पों में नहीं दे पाती। परन्तु इस क्रिया में असली मादा पुष्पों का परागण तो हो ही जाता है।

अंजीर
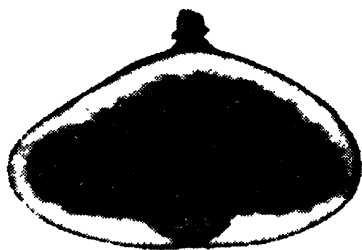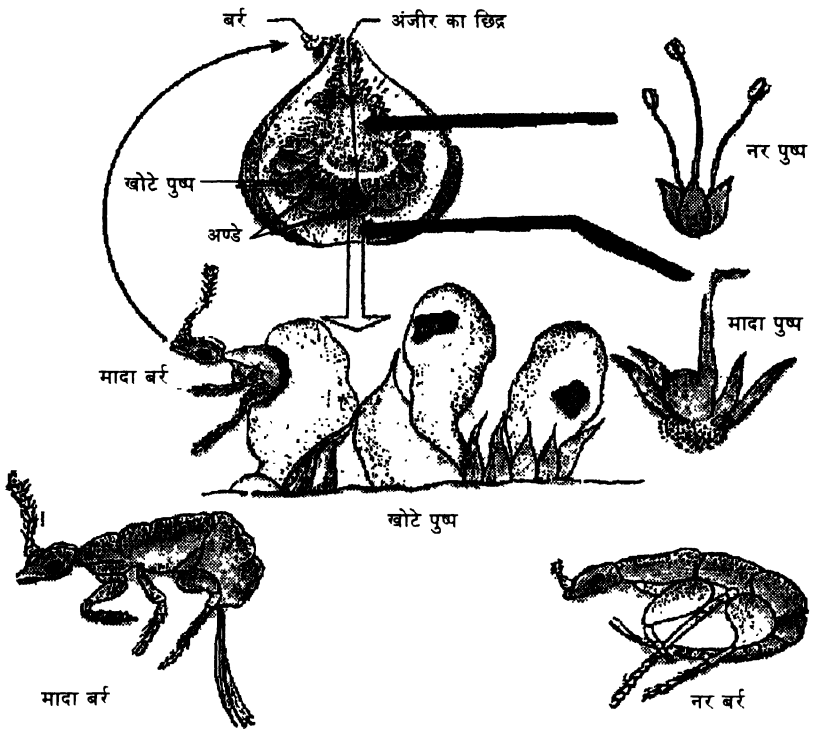
अंजीर में पर-परागण: नर और मादा बर्र (ब्लास्टोफैगा) की रचना बहुत फर्क होती है। नर ताउम्र अंजीर के अंदर ही रहता है। इसलिए उसके पंख भी विकसित नहीं होते। खुद किसी खोटे पुष्प में से बड़ा होकर बाहर निकलता है और फिर अन्य खोटे पुष्पों को टटोलकर किसी परिपक्व मादा को उसी के अंदर घुसकर निषेचित कर देता है। बस, फिर उसकी इहलीला समाप्त।
परागण का कार्य केवल गर्भवती मादा ही करती है। गर्भवती मादा अण्डे देने के लिए सुरक्षित स्थान खोजते हुए नर पुष्पों से परागकण लेकर मादा पुष्प पर पहुंचती है जिससे परागण की क्रिया पूरी होती है। गर्भवती मादा ब्लास्टोफैगा अंजीर के मादा पुष्प की वर्तिका लम्बी होने के कारण उनमें अण्डे नहीं दे पाती। खोटे पुष्पों की वर्तिका छोटी होती हे और नीचे का हिस्सा फूला हुआ।
चित्र में विभिन्न रचनाओं को समझने के लिए तीनों तरह के पुष्पों और ब्लास्टोफैगा को खूब बड़ा बनाकर दिखाया गया है।

मादा बर्र नकली मादा पुष्पों में, जिनका नीचे वाला भाग काफी फूला होता है, अपने अण्डे देती है। वहीं इन अण्डों से लार्वा एवं वयस्क बर्र बनते हैं।

अगर बर्र के जीवनचक्र और गूलर के फूलों के निषेचन को सिलसिलेवार
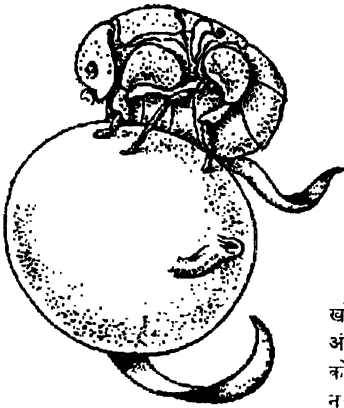
खोटे स्त्रीपुष्प के अंदर मौजूद मादा को निषेचित करता नर ब्लास्टोफैगा।

इस तरह गूलर के इस गेंदनुमा पुष्पक्रम में बर्र की दो पीढ़ियां मर-खप चुकी होती हैं।

निषेचित मादाएं परिपक्व होने पर खोटे पुष्पों में से बाहर निकलती हैं। अब गेंदनुमा रचना से बाहर आने का एक ही रास्ता होता है – वही छिद्र जिसके मुंह पर लगे नर फूल अब तक पककर परागयुक्त हो चुके होते हैं।

देखा जाए तो घटनाक्रम कुछ इस तरह होगा। गूलर के कच्चे पुष्पक्रम (गेंदनुमा रचना) में मादा बर्र छिद्र से अंदर जाती है। वहां यह खोटे मादा पुष्पों में अपने अंडे देती है। ऐसा प्रयास यह बर्र सच्चे मादा पुष्पों के साथ भी करती है पर उनकी वर्तिका लम्बी होने के कारण इसे सफलता नहीं मिलती। अंडे देने के बाद मादा की मृत्यु हो जाती है।

खोटे मादा पुष्पों में दिए गए अंडे विकसित होते हैं। कुछ दिन बाद खोटे मादा पुष्पों से बर्र की संतानें यानी वयस्क पतंगे निकलते हैं। नर बर्र का विकास तेज़ी से होता है, अतः वह खोटे पुष्पों में से पहले बाहर निकल आता है और उसी गेंदनुमा रचना के अंदर ऐसे खोटे पुष्पों को खोजता है जिसमें मादा बर्र अभी खोटे स्त्री पुष्प के अंदर ही है। नर बर्र ऐसे फूल के अंदर घुसकर मादा बर्र को वहीं निषेचित कर देता है। इसके तुरंत बाद उसकी भी मृत्यु हो जाती है।

वयस्क मादा बर्र की बाहर निकलने की कोशिश में उस पर नर फूल के परागकण भी चिपक जाते हैं। परागकणों से लदी यह मादा बर्र अपने अंडे देने के लिए नए पुष्पक्रमों की तलाश कर उनमें घुस जाती है। उसके साथ आए परागकणों से मादा फूलों का परागण हो जाता है।

नर एवं मादा ब्लास्टोफैगा की रचना एवं आकार भी अलग-अलग होते हैं। नर इस गेंदनुमा पुष्पक्रम में से कभी बाहर नहीं निकलते। उनका पूरा जीवनचक्र गूलर के आंदर ही खत्म हो जाता है। उनका काम सिर्फ मादा को निषेचित करना ही है। यह क्रिया सम्पन्न कर वे मृत्यु का वरण करते हैं। नर बर्र के पंख तक नहीं होते। और परागण का कार्य केवल गर्भवती मादा ब्लास्टोफैगा ही करती है। खोटे मादा पुष्पों पर अंडे देने के बाद वह एक विशिष्ट द्रव की बूंद भी उस पर छोड़ती है ताकि इस खोटे पुष्प का अंडाशय गठान में बदल जाए। इससे खोटे पुष्प में

गूलर

विकसित हो रही बर्र को भोजन मिलना तय हो जाता है।

गूलर और ब्लास्टोफैगा के पारस्परिक संबंध में बर्र को अपने अंडे देने के लिए सुरक्षित स्थान व बच्चों के लिए भोजन की जगह मिल जाती है। अंडों से निकलने वाले लार्वा को कोई खतरा नहीं होता क्योंकि वे पुष्पक्रम के अंदर सुरक्षित रहते हैं। दूसरी ओर इस बर्र की मदद से गूलर के फल व बीज बनना सुनिश्चित हो जाता है।

ब्लास्टोफैगा या और कोई...

उल्लेखनीय है कि यह वर्णन अंजीर (फिग) का है। गूलर और पीपल भी इसी वंश के पेड़ हैं इसलिए हो सकता है कि इनमें ब्लास्टोफैगा की कोई अन्य प्रजाति परागण का कार्य करती हो।

अंत में, कुल मिलाकर गूलर के फूल उस मायने में नहीं होते जैसे हमने अन्य पौधों के देखे हैं। अतः जन सामान्य के लिए यह ठीक ही है कि गूलर के फूल नहीं दिखाई देते। परन्तु वनस्पति विज्ञान की दृष्टि से गूलर के फूल होते हैं — एक-दो नहीं हज़ारों, अलग-अलग नहीं ढेर सारे एक साथ, पूर्ण नहीं अपूर्ण (क्योंकि इनमें अंखुड़ी और पंखुड़ी नहीं होती) और नर व मादा फूल अलग-अलग।

वनस्पति विज्ञान की नज़र से गूलर का तथाकथित पका फल एक विशेष प्रकार का पुष्पक्रम है जिसके अंदर हज़ारों की संख्या में छोट-छोटे फल लगे होते हैं। यानी जब आप अंजीर खाते हैं तो एक-दो नहीं हज़ारों छोटे-छोटे दानेदार, बीजों से भरे फलों के साथ पूरा-का-पूरा परिपक्व पुष्पक्रम खाते हैं। इस दृष्टि से ये एक विशिष्ट फल यानी फलों का समूह है।

गूलर की बात समाप्त करने से पूर्व उसकी एक और विशेषता का ज़िक्र कर लिया जाए तो बेहतर होगा, और वह है इसके पुष्पक्रमों के लगने का तरीका। सामान्यतः फूल पौधों की नई आगे की शाखाओं पर खिलते हैं, लेकिन अगर आपने कभी ध्यान दिया हो तो गूलर में ये पुष्पक्रम मोटे-मोटे तनों पर सीधे गुच्छों की शक्ल में लगते हैं। इसकी इस विशेषता को वनस्पतिशास्त्री कॉलीफ्लोरी कहते हैं।

(- डॉ. भोलेश्वर दुबे, वनस्पतिशास्त्र विभाग, शासकीय के.पी. कॉलेज, देवास, म.प्र.
- डॉ. किशोर पंवार, वनस्पतिशास्त्र विभाग, शासकीय महाविद्यालय, सेंधवा, ज़िला खरगौन म.प्र.)

▣▣▣

एक पिता के अनुभव

स्कूल की मार

के. आर. शर्मा

जैसा कि अपने समाज में होता है जैसे ही बच्ची या बच्चा चलने-फिरने, बोलने-बतियाने लगे, थोड़ा बहुत समझने लगे कि उसको स्कूल में भर्ती करा दिया जाता है। आखिर बच्चे को घर पर रखकर करें भी क्या! कोई बिगाड़ना थोड़े ही है। और बच्चों को पढ़ाने के लिए स्कूल के अलावा दूसरी जगहें भी कहां हैं समाज में। यानी कि स्कूल का दूसरा कोई विकल्प भी तो नहीं है ना।

जब हमारी बेटी साढ़े तीन साल की हो गई तो उसको स्कूल में भर्ती कराने की चर्चाएं, चिंताएं होने लगीं। हालांकि हम लोग बच्ची को स्कूल में भर्ती कराने में देरी कर चुके थे, ऐसा

कुछेक लोगों का कहना था। साढ़े तीन साल की बच्ची 'सोनू' पता नहीं कितनी चीज़ों को अपना खिलौना बना डालती थी, गीत गाती थी, तंग भी करती थी, इसलिए उसको स्कूल में भर्ती कराना हमारी मजबूरी थी। जब स्कूल में भर्ती कराने की बारी आई तो हमने तय किया था कि कम-से-कम

एक ऐसे स्कूल में बच्ची को डालें जिसमें उसे खुलापन मिले, जहां उसके बचपन का ध्यान रहे। चूंकि 'तोत्तोचान' नामक एक जापानी बच्ची के बारे में लिखी गई पुस्तक को मैंने पढ़ रखा था इसलिए उस नन्हीं-सी बच्ची तोत्तो के वाकियात तस्वीर की शक्ल अख्तियार करके आंखों के सामने घूमने लगते थे। पुराने रेल के डिब्बे में तोत्तोचान की कक्षा लगती थी। कुल मिलाकर तोत्तो को इस नए स्कूल में बड़ा मज़ा आता था। स्कूल में उसको अपनापन लगता था, किसी प्रकार का डर नहीं। न ही ऊब होती थी स्कूल में। सब कुछ सहज और सबसे अहम बात यह थी कि सीखने-सिखाने की प्रक्रियाएं मौजूद थीं, चुनौतीपूर्ण किन्तु सहज। आप मानें या न मानें, पर हम ऐसे ही एक स्कूल की तलाश में थे। शहर के अनेक स्कूल छाने – सरकारी और प्राइवेट दोनों। दरअसल सरकारी स्कूलों से तो हम शहरी पढ़े-लिखे लोग नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं, यह बात किसी से छिपी नहीं है।

इसी दरम्यान मुझे पता चला कि शहर की एक प्रतिष्ठित कॉलोनी में सरकारी स्कूल था जिसको शिक्षा

विभाग को बंद करना पड़ा, "क्योंकि सरकारी स्कूलों में रखा क्या है।"

मन में यह सवाल बरकरार था कि आखिर सरकारी स्कूलों की पढ़ाई के तौर-तरीकों में तो कोई फर्क है नहीं और प्राइवेट स्कूल अंग्रेज़ी का राग अलापते हैं। खैर सरकारी स्कूलों में देखी-समझी अव्यवस्था के चलते हमने तय किया कि किसी प्राइवेट स्कूल में ही बच्ची को भर्ती कराना उचित होगा और शहर की एक अच्छी समझी जाने वाली स्कूल में हमने अपनी बेटी 'सोनू' को भर्ती करा दिया।

घर का नाम सोनू, बाहर का नाम श्रुति। स्कूल में बच्ची के इन्टरव्यू के दौरान एच.एम. (हेडमास्टर) से काफी बतिया रही थी वो। सोनू का एडमिशन हो गया। नियम कानूनों के बारे में एच.एम. ने हमको बताया। कोई दर्ज़न भर से भी ज़्यादा नियम कानूनों को पालन करने के लिए हमसे हामी भरवाई गई।

हम कभी नहीं भूल सकते जब साढ़े तीन साल की नन्हीं-सी जान स्कूल जाने के लिए लालायित थी। हमारे आगे-आगे भागी जा रही थी। उसने अपने बस्ते में कुछेक खिलौने रखे हुए थे। शायद सोचा होगा कि स्कूल में खेलने-कूदने को मिलेगा।

स्कूल पहुंचने पर उसकी टीचर ने हमको किताबों की एक लंबी फेहरिस्त थमा दी। बच्ची को टीचर के सुपुर्द किया। टीचर ने बच्ची का बस्ता देखा, हमको वापस बुलाया और उसके बस्ते के खिलौने हमको यह कहकर दे दिए कि यहां इनकी ज़रूरत नहीं। वह अपने चहेते खिलौनों से जुदा नहीं होना चाहती थी, उसने जिद भी की। बहरहाल बस्ते में खिलौनों की जगह किताबों ने ले ली।

शाम का समय – सोनू स्कूल से घर लाई जा चुकी है। हालांकि बस्ते में नई-नई किताबें भरी थीं, किंतु उसने शाम को बस्ते की तरफ देखा भी नहीं और अपने खिलौनों में मशगूल हो गई।

दूसरे दिन वह स्कूल जाने के नाम पर सिसकते हुए बोली – "मैं स्कूल नहीं जाऊंगी।"

"क्यों नहीं जाओगी?," उसकी मां ने पूछा।

"स्कूल तो गंदी है ... नहीं जाऊंगी।"

"टीचर डांटती है।"

"लिखने को कहती है टीचर।"

"वहां खेलने नहीं देते।"

"मेरी दोस्त से बात भी नहीं करने देती। हम सबको मुंह पर ऊंगली रखने को कहती है।"

टुकड़े-टुकड़े में उसने सब कुछ बताया और वह फिर खेलने में व्यस्त हो गई।

सोनू स्कूल न जाने की हर संभव कोशिश करती है। अक्सर वह स्कूल जाने के समय हमारे पड़ोसी के घर चली जाती है। पर उसको स्कूल तो जाना ही है। ज़बरदस्ती सोनू को स्कूल भेजा जाता है।

कुछ ही दिनों में हमको अहसास

हो गया कि स्कूल बच्ची को खुशियां प्रदान नहीं कर पाएगा। हम यह तो समझते हैं कि हर काम में खुशियां नहीं मिलतीं। और बच्चों को कठिन काम भी सौंपने चाहिए, पर उन कामों में चुनौतियां होनी चाहिए। हकीकत यह है कि स्कूल में बच्चों को चुनौतियां नहीं परोसी जाती।

*

एक दिन मैं सोनू से पूछता हूं, "स्कूल में तुमको क्या अच्छा लगता है?"

वह कहती है, "कुछ भी नहीं।"

"फिर भी, कुछ तो अच्छा लगता होगा?"

वह थोड़ा सोचती है, और कहती है, "हां, क्लास के बाहर मैदान में कुत्ते के छोटे-छोटे बच्चे घूमते रहते हैं, वो बड़े अच्छे लगते हैं? पर टीचर तो खिड़की में से बाहर देखने भी नहीं देती!"

*

रोज़ का सिलसिला बन पड़ा था – सोनू का स्कूल जाने के दौरान रूठना, बहाने बनाना! वह दूसरी कक्षा में प्रवेश पा चुकी थी।

एक दिन जो वाकिया हुआ उसने हमारे दिलो-दिमाग को हिलाकर रख दिया। शाम को सोनू स्कूल से घर आती है। उसका खाने का डिब्बा ज्यों-का-त्यों है। पूछने पर बताती है टीचर ने नहीं खाने दिया।

"क्यों?," सोनू की मां ने पूछा।

इस क्यों का उसके पास कोई जवाब नहीं था। दूसरे दिन हम टीचर से मिले।

पूछने पर टीचर ने कहा, "देखिए जो लिखने को दिया था वह इसने नहीं लिखा। इसलिए इसको खाना नहीं खाने दिया।" (हमने देखा कि कक्षा में 8-10 नन्हें बच्चे बेंच पर खड़े हैं।)

हमने पूछा कि बच्ची ने लिखा नहीं इसलिए उसको दोपहर के खाने से वंचित रखना कहां तक तर्कसंगत है? क्या उसको खाना नहीं खाने देने से वह लिखेगी?

टीचर बड़े गुस्से में बोली, "देखिए यह सब तो करना पड़ता है और मैंने उसकी पिटाई तो नहीं की है। थोड़ा-सा तो डराना पड़ता है।"

दरअसल अच्छे-से-अच्छे समझे जाने वाले स्कूलों में भी छात्रों को किसी-न-किसी प्रकार की सज़ा दी जाती है। मैं पूछना चाहता हूं कि क्या बिना सज़ा के बच्चों को पढ़ाया नहीं जा सकता? जबकि सच्चाई तो यह है कि स्कूल की पढ़ाने की प्रक्रियाएं सहज और रुचिकर नहीं होती और इस वजह से बच्चे ऊबने लगते हैं, शरारत करने लगते हैं। बच्चों को कक्षा की दीवार पर लगे ब्लैक बोर्ड पर फूल पत्ती का चित्र बनाकर पढ़ाया जाता है जबकि खिड़की में हाथ डालकर पत्ती तोड़ी जा सकती है।

*

तीसरी कक्षा में पानी के बारे में पढ़ाया जा रहा है – पानी में कौन-

कौन-सी चीज़ें घुलती हैं? यह केवल ब्लैक-बोर्ड पर बताया जाता है।

तीसरी में ही विज्ञान विषय में पेड़ के बारे पढ़ाया जाता है। एक दिन सोनू ने घर आकर बताया कि पापा पौधे के बारे में टीचर ने होमवर्क दिया है। होमवर्क कॉपी में चित्र बनाने के पहले मैंने छोटा-सा पौधा उखाड़ा और उसको बताया। अनेक सवाल-जवाब हुए। और फिर उसने कॉपी में उस पौधे का चित्र बनाया। टीचर ने जब कॉपी जांची तो पौधे के चित्र को काट दिया। इसलिए क्योंकि किताब में और उसकी कॉपी में बने चित्र में फर्क था। कॉपी में बनाया चित्र था तो पौधे का, पर उसकी पत्तियां लंबी न होते हुए गोलाई लिए हुए थीं। उसने जो देखा था हुबहू बना डाला था इस वजह से कॉपी में नोट मिला कि फिर से चित्र बनाओ। ऐसे और भी कितने ही मामलों में हमने सोनू को अपने आसपास की चीज़ों को देखने के लिए प्रेरित किया किंतु नतीजे उल्टे ही निकले। जो किताब में लिखा है बस वही सच है — टीचर कहती है।

एक कारण यह भी है कि सोनू को कोर्स की किताबें पढ़ने में ज़रा भी मज़ा नहीं आता। जबकि हमने देखा कि वह दूसरी कहानी-किस्सों की किताबें चाव से पढ़ती है। रविवार को अखबारों में बच्चों के कॉलम में प्रकाशित सामग्री को सोनू बड़े चटखारे
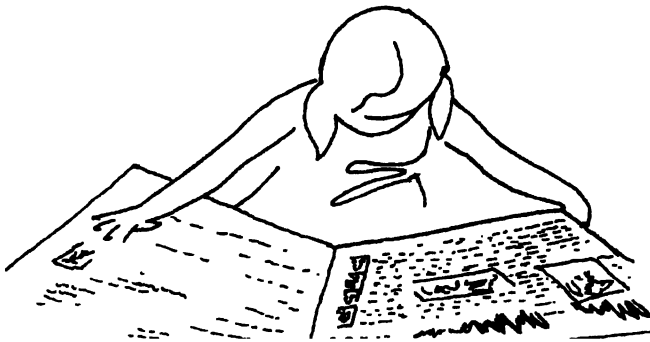
ले लेकर पढ़ती है।

प्राइवेट स्कूलों की एक सबसे बड़ी दिक्कत यह भी है कि बच्चे स्कूल के अलावा घर पर भी चैन से नहीं जी सकते। स्कूल से घर आए कि होमवर्क के लिए जोत दिए जाते हैं।

बच्चों को क्या समझ में आया इससे कोई लेना-देना नहीं, होमवर्क पूरा होना चाहिए। और जो पूछा जाए उसका उत्तर दिया जाए – बस। ताकि परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हो सकें। हमने देखा कि जब सोनू तीसरी कक्षा में थी तब तीन-तीन घंटों तक तो उसको होमवर्क ही करना पड़ता था। यदि होमवर्क नहीं हुआ तो दूसरे दिन डायरी में एक लंबा-सा नोट पालक के लिए भेजा जाता है।

मैं सोचता हूं कि प्राइवेट स्कूल किस मायने में बेहतर होते हैं? क्या यहां के शिक्षकों का शैक्षिक स्तर बेहतर होता है? क्या यहां की शिक्षण पद्धति सरकारी स्कूलों से फर्क होती है! हम पिछले कुछ वर्षों से देख रहे हैं कि ऐसा तो कुछ भी नहीं। प्राइवेट स्कूलों में तो अंग्रेज़ी का बोलबाला होता है फिर भी सरकारी स्कूलों के शिक्षकों से शैक्षिक स्तर पर प्राइवेट स्कूल के शिक्षक बेहतर नहीं दिखे। न ही पढ़ाई के तौर तरीकों में कोई बुनियादी फर्क दिखा। बल्कि एक चीज़ ज़रूर दिखी कि प्राइवेट स्कूल के बच्चों को बस्ते का बोझा अधिक है। पाठ्य-पुस्तक निगम की पुस्तकों के अलावा दिल्ली-कलकत्ते के निजी प्रकाशनों की मंहगी किताबें बस्ते का बोझ बढ़ा देती हैं।

अच्छे स्कूल समझे जाने वाले स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों के बस्ते भारी भरकम होते हैं, वहां अनुशासन का कहीं ज़्यादा दबदबा होता है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं – स्कूल के माहौल को एकदम असहज बनाने की भरपूर कोशिश होती है। शायद बच्चों को चारदीवारी में बंद करके उनको उबाने में स्कूल को आनंद और संतोष मिलता है। बच्चों को कंट्रोल करने के लिए उनको शारीरिक दंड मिलता है

या उनके साथ जो बर्ताव होता है, वह भी अक्सर हिंसात्मक होता है।

*

सोनू को स्कूल जाते हुए छह साल हो चुके हैं। इस दौरान हम इतने मजबूर हो चुके हैं कि चाहकर भी घर पर सीखने की प्रक्रियाओं पर ज़ोर नहीं दे पाते हैं। क्योंकि हमें बच्ची को वह सब कुछ प्राथमिकता के आधार पर कराना होता है जो स्कूल चाहता है। स्कूल में प्रतिस्पर्धा का ज़बरदस्त बोलबाला है। पल-पल में प्रतिस्पर्धा है। यहां तक कि बाल सभा जो कि स्कूल का अनौपचारिक कार्यक्रम होना चाहिए, वहां भी हर बच्ची या बच्चे को बोलने की छूट नहीं दी जाती और वातावरण इस तरह बनता है कि उनमें ईर्ष्या की भावना पैदा कर दी जाती है कि मैं फलां से बेहतर हूं।

हमने अहसास किया कि सोनू जब अपनी मर्ज़ी से पढ़ने बैठती है या हमसे पढ़ना चाहती है तो उसके ज़ेहन में एक ही बात होती है कि उसने पढ़ाई नहीं की तो कम नंबर आएंगे, वो 'फेल हो जाएगी', 'टीचर जी डांटेंगी' वगैरह-वगैरह! और इस चक्कर में उसकी जिज्ञासाओं का दमन होता जा रहा है। वह स्कूल में तो सवाल पूछ नहीं सकती पर घर में चाहकर भी नहीं पूछती क्योंकि उसको पढ़ाई जो करनी है।

कुल मिलाकर स्कूल बच्चों में यह भावना पनपाते हैं कि स्कूल में जो कुछ भी वे करते हैं उसका लक्ष्य परीक्षा में अच्छे अंक पाने से ज़्यादा कुछ नहीं।

बहरहाल, सोनू स्कूल के वातावरण से पीड़ित है। पर अब उसको ऐसा लगने लगा है कि स्कूल में तो यह सब होना ही है। यदि उसको कुछ समझ नहीं आ रहा या दिया गया काम पूरा नहीं कर पाई तो वह अपनी गलती समझती है। हालांकि शिक्षक ही इसका अहसास क्रूरतापूर्वक करवाते हैं। हम सोनू के दोस्तों को भी जानते हैं। उनकी भी कमोबेश यही स्थिति है। वे भी स्कूल के माहौल से पीड़ित हैं। पर वही सवाल है कि हमारे सामने स्कूल का कोई विकल्प है क्या?

अपने देश में लाखों बच्चे स्कूल नहीं जाते। उसका कारण उन बच्चों के परिवार की आर्थिक या पारिवारिक परिस्थितियों का महज प्रतिकूल होना नहीं बल्कि स्कूल का माहौल भी शायद एक कारक है उसमें। बच्चा आखिर स्कूल क्यों जाए?

(के. आर. शर्मा – एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध, उज्जैन केंद्र में कार्यरत।)

रेखा चित्रः उमेश गौर

सवालीराम्
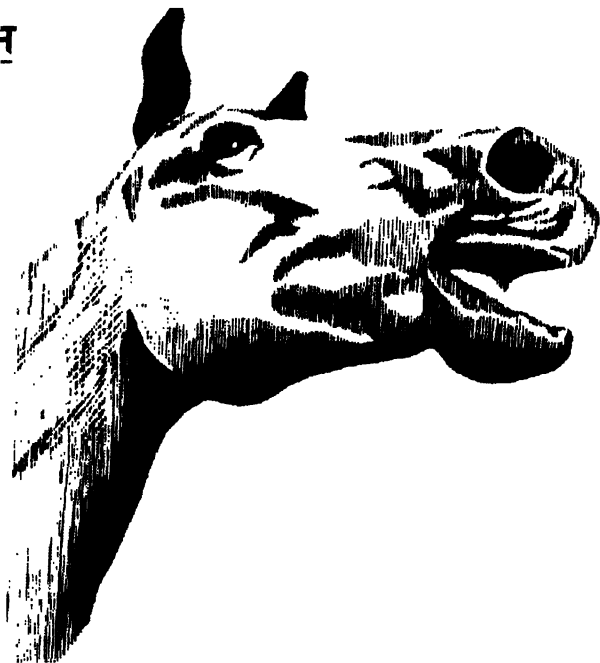
घोड़ा लेटता है, बैठता भी

सवाल: घोड़े सोते वक्त भी अपने पैरों पर नहीं बैठते और अपनी पूरी ज़िंदगी खड़े-खड़े बिताते हैं। ऐसा क्यों?

जवाब: हो सकता है जहां भी और दिन रात के अलग-अलग हिस्सों में जब भी हमने घोड़े को देखा, हमने घोड़े को खड़ा ही पाया और मन में स्वाभाविक सवाल उठा कि क्या ये हमेशा खड़ा ही रहता है?

वैसे यह धारणा पूरे तौर पर सही नहीं है। हां, यह ज़रूर है कि घोड़ा दिन और रात के अधिकतर हिस्से में खड़ा ही रहता है।

कब लेटेगा घोड़ा

दरअसल घोड़े के लेटने-बैठने का मामला घोड़े की नींद की अवस्थाओं से जुड़ा हुआ है।

घोड़ा केवल गहरी नींद की अवस्था में ही लेटता है। इस अवस्था को 'रेम' (Rapid Eye Movement) अवस्था भी कहते हैं। क्योंकि उस दौरान आंख की पुतलियां लगातार तेज़ी से इधर-उधर घूमती हुई
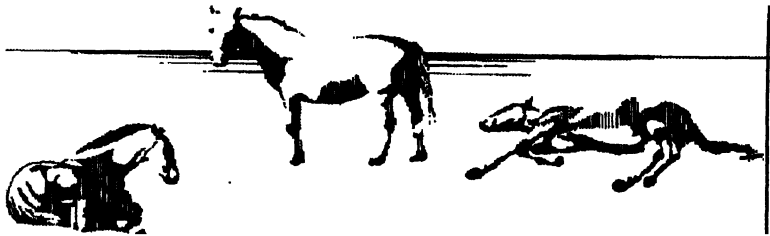
नज़र आती हैं।*

घोड़े में गहरी नींद की स्थिति एकसाथ बहुत कम समय के लिए ही आती है इसलिए कभी-कभार ही ऐसा होता है कि घोड़ा लगातार आधे घंटे तक लेटा रहा हो। वैसे भी कुल मिलाकर दिन भर में घोड़ा तीन-चार घंटे ही सोता है। वो भी एक बार में नहीं। आदत के मुताबिक वह नींद की झपकियों को छोटे-छोटे टुकड़ों में भी ले सकता है। इसमें से भी ज़्यादातर हिस्सा हल्की नींद का होता है। इसके अलावा जिस गहरी नींद की बात हम कर रहे हैं वह भी उसे एक-बार में नहीं आती बल्कि पूरे दिन भर में कुछ-कुछ मिनटों के गहरी नींद के झोंके आते हैं – जिनकी संख्या आठ, नौ के आसपास होती है। इसलिए घोड़ा ऐसी किसी गहरी नींद की अवस्था में ही चंद मिनटों के लिए लेटता है।

घोड़े की परिस्थिति का भी उसकी नींद की अवस्था पर बहुत असर होता है। जैसे तांगे से जुते हुए घोड़े को आप

** रेम नींद के बारे में विस्तृत लेख इसी अंक में पृष्ठ 39 पर।*
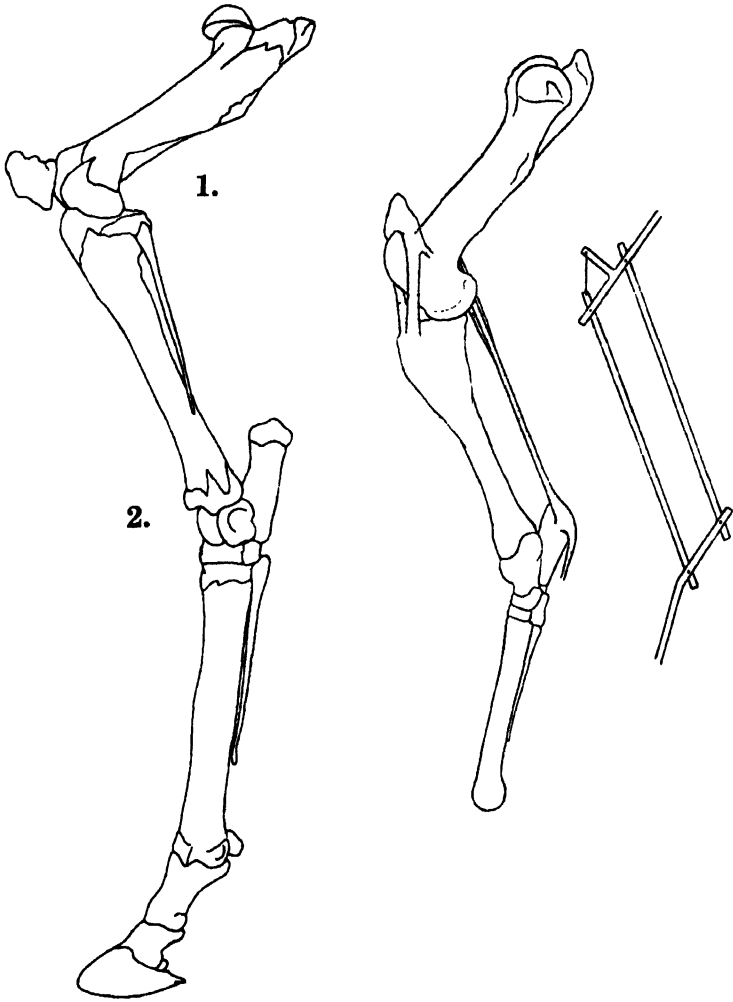
घोड़े के पिछले पैरों की संरचना: जोड़ 1 और 2 के बीच बन रही चतुर्भुजाकार संरचना दरअसल एक तरह का लॉक सिस्टम है। इस चतुर्भुज के किसी भी एक कोने के रुकने की स्थिति में बाकी तीनों भी जाम हो जाते हैं। इसलिए घोड़ा चाहे तो खड़े-खड़े भी सो सकता है। यह लॉक सिस्टम उसे गिरने से बचाता है।

कभी-भी गहरी नींद में सोते हुए नहीं पाएंगे। गहरी नींद तो वो रात को तांगे से अलग हो जाने के बाद ही लेता है।

यहां पर यह जान लेना भी उचित होगा कि बहुत ही कम समय तक बैठना केवल वयस्क घोड़े में ही पाया जाता है। घोड़े के बच्चे तो घंटों बैठे-लेटे रह सकते हैं।

घोड़े की एक विशेषता की तरफ आपका भी ध्यान गया होगा कि खड़े-खड़े सो जाने पर भी वह गिरता नहीं है। इस विशेषता के लिए उसके पीछे के पैरों की रचना ज़िम्मेदार है।

पिछले पैरों में लॉक

ज़रा इस संरचना के रेखाचित्र को ध्यान से देखिए – कूल्हे से निकल रही हड्डी जहां दूसरी हड्डी से मिल रही है (एक नंबर का जोड़) वहां हड्डी का एक टुकड़ा बाहर की ओर निकला दिख रहा है; जो नीचे की हड्डी से निकल रहे तंतु से बंधा-सा हुआ है। इसी तरह दूसरे नंबर के जोड़ में भी हड्डी का एक टुकड़ा बाहर की ओर निकला हुआ है जो कूल्हे से निकली हड्डी से निकल रहे तंतुओं से जुड़ा हुआ है। यहां इन दो हड्डियों के बीच जो रचना बन रही है वो चतुर्भुजाकार है। इसमें किसी भी एक कोने के स्थिर होने की स्थिति में बाकी सारे कोने जाम हो जाते हैं, और बन जाता है एक मज़बूत लॉक सिस्टम जो खड़े-खड़े सोने की स्थिति में घोड़े को गिरने से बचाता है।

यहां एक और स्वाभाविक प्रश्न उठ सकता है कि इतने लंबे समय तक लगातार खड़े रहने से घोड़ा थक नहीं जाता होगा क्या? दरअसल अपने पैरों को आराम पहुंचाने का एक और तरीका है घोड़े के पास, इसे जानने के लिए उसे ज़रा गौर से देखना पड़ेगा। जब भी घोड़ा एक जगह पर खड़ा हो तो उसका कोई न कोई एक पैर थोड़ा-सा उठा हुआ दिखेगा। इस तरह वो एक-एक कर चारों पैरों को ऊपर उठा कर अपना वज़न बाकी के तीन पैरों पर डालता रहता है ताकि एक-एक कर पैरों को पूरा आराम दे सके।

क्यों लेटता है इतना कम

अब सवाल उठ सकता है कि घोड़ा इतना कम बैठता या लेटता क्यों है? एक जवाब तो उसकी शारीरिक संरचना में छुपा है। बैठने की स्थिति में उसका पूरा का पूरा वज़न गरदन और पेट के बीच के हिस्से में केंद्रित हो जाता है – जहां कि श्वसन तंत्र स्थित है। इस वज़न के कारण वहां दबाव बनता है और हवा का फेफड़ों तक पहुंचना मुश्किल होने लगता है। अगर यह स्थिति 15-20 मिनट से अधिक बनी रहे तो घोड़े के लिए जानलेवा हो सकती है।

परन्तु घोड़े के अधिकतर समय खड़े रहने का मुख्य कारण शायद उसके विकास (Evolution) से जुड़ा हुआ है। आज तो हमें दुनिया में कहीं भी घोड़ा अपने प्राकृतिक निवास में नहीं मिलेगा, क्योंकि केवल पालतू घोड़े की नस्लें ही बची हैं अब। परन्तु घोड़ा मुख्यतः एक मैदानी जानवर है। घास भरे मैदानी इलाकों में घोड़े के पैरों की इस विशेषता के कारण

शायद उसे शिकारी के आक्रमण से बचने के लिए फुर्ती से भाग खड़े होने में मदद मिलती होगी।

तुलनात्मक अवलोकन

घोड़े का अवलोकन करते समय या अन्य लोगों से उसकी आदतों के बारे में जानकारी लेते हुए आपको एक और बात का ख्याल रखना होगा कि आपको घोड़े की आदतों के बारे में ही बताया जा रहा है – न कि उसी जैसे दिखने वाले खच्चर के बारे में! वैसे, एक समान दिखने वाले दो-तीन जानवरों की आदतों में तुलना करना भी रुचिकर हो सकता है। घोड़े, खच्चर और गधे की आदतों की तुलना हमें एक ऐसा ही अवसर देती है।

यह सवाल पूछा था नितिन वैद्य, 3164/टाइप-3, ऑर्डिनेंस फैक्ट्री, इटारसी, ज़िला होशंगाबाद ने।

इस बार का सवाल

सवाल: सभी कहते हैं कि पृथ्वी घूमती है। हम पृथ्वी पर रहते हैं पर हमें कभी महसूस नहीं हुआ कि पृथ्वी घूमती है?

सोनी
हरिओम जनरल स्टोर्स, मीठी गली
पिपरिया, ज़िला होशंगाबाद

हो सकता है कि कभी आपने भी इस सवाल के बारे में सोचा हो। अगर आपके पास इससे जुड़ी कोई जानकारी है तो हमें लिख भेजिए। हमारा पता है:
संदर्भ, द्वारा एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद, म.प्र. 461 001

▣▣▣

आठवें/नौवें अंक में ज़रा सिर तो खुजलाइए में सवाल पूछा गया था कि तार बर्फ को काट रहा है लेकिन बर्फ नहीं कट रही। कई लोगों ने इसका जवाब देने की कोशिश की लेकिन सही नहीं थे। दसवें अंक – जिसमें इस गुत्थी का हल था –के निकलने के तुरंत बाद हमें राजनादगाव के नौंवी के विद्यार्थी मृणाल शर्मा का जवाब मिला। जवाब बिल्कुल सही था।

24 अक्टूबर 1995
भिण्ड, म. प्र.

सूर्य ग्रहण एक रिपोर्ट
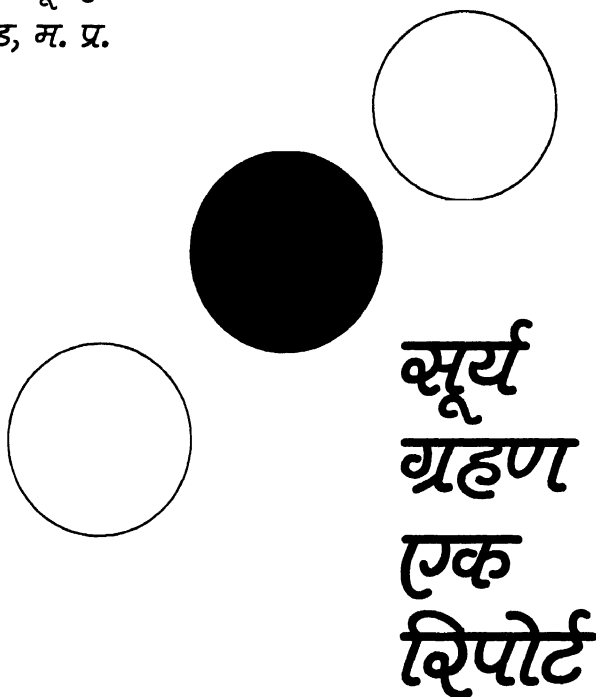
□ शशि सक्सेना और प्रमोद उपाध्याय

चारों तरफ कितना शोर मचता है खग्रास सूर्य ग्रहण के पहले, लेकिन फिर अगले पूर्ण सूर्य ग्रहण तक एक चुप्पी छाई रहती है। सूर्य ग्रहण के दौरान कई छोटे-बड़े प्रयोग किए जाते हैं लेकिन इनके बारे में पढ़ने के लिए शायद ही कुछ मिल पाता है। यहां पेश है दिल्ली के एक समूह द्वारा ग्रहण के दौरान हवा के तापमान और सूरज की रोशनी को लेकर किए गए कुछ अवलोकन और आंकड़े।

सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण उन खगोलीय घटनाओं में से हैं जो आम लोगों और खगोल शास्त्रियों, दोनों ही को एक जितना आकर्षित करती हैं। पिछले साल 24 अक्टूबर 1995 को हुआ सूर्य ग्रहण भी इसमें कोई अपवाद नहीं था। खास तौर पर, इस बार तो संचार माध्यमों, पत्र-पत्रिकाओं और सरकारी व गैर सरकारी संस्थानों के प्रचार की बदौलत सूर्य ग्रहण और उससे जुड़े शब्द कुछ समय के लिए तो ज़्यादातर लोगों की ज़िंदगियों का हिस्सा बन गए थे।

इस बार पूर्ण सूर्य ग्रहण, जिसे खग्रास ग्रहण भी कहते हैं, उत्तर भारत से गुज़रती हुई एक पतली-सी पट्टी से दिखाई दिया। इन इलाकों में रहने वालों के अलावा दूर-दराज़ से आए ढेरों लोगों ने इस पट्टी में आकर पूर्ण सूर्य ग्रहण का नज़ारा देखा। चंद लम्हों के दौरान आंशिक ग्रहण से पूर्ण ग्रहण और फिर सामान्य में लौटने की घटना देखने का अनुभव बेहद रोमांचक और अविस्मरणीय होता है। उसके बारे में कितना भी पढ़ लो, पर उस क्षणिक नज़ारे की खूबसूरती अपनी आंखों से देखने से ही समझ में आती है। भर सुबह का सियाह हो जाना, तापमान के अचानक गिरने से सिरहन का अहसास, किताबों में पढ़े मोतियों का झट से दिखकर ओझल हो जाना, बेहद खूबसूरत डायमंड रिंग, करोना .... अब भी वो सब अविश्वसनीय-सा लगता है।

आइए एक बार फिर उस घटना की याद ताज़ा कर लें, लेकिन थोड़े वैज्ञानिक तरीके से!

* * *

खग्रास ग्रहण की यह पट्टी मध्यप्रदेश के ऊपरी हिस्से से भी गुज़रने वाली थी। ग्वालियर से लगभग 100 किलोमीटर की दूरी पर स्थित भिंड भी पूर्ण सूर्य ग्रहण

तालिका: 1

भिंड में 24 अक्टूबर 1995 को सूर्य ग्रहण की विविध स्थितियां और समय

स्थितियां	समय
आंशिक ग्रहण शुरू हुआ	7 बजकर 25 मिनट 21 सेकंड
पूर्ण ग्रहण शुरू हुआ	8 बजकर 35 मिनट 19 सेकंड
पूर्ण ग्रहण खत्म हुआ	8 बजकर 36 मिनट 18 सेकंड
आंशिक ग्रहण खत्म हुआ	9 बजकर 55 मिनट 50 सेकंड

की इस पट्टी में आ रहा था। बीस लोगों का हमारा लश्कर साजो-सामान समेत ग्रहण देखने और कुछ प्रयोग करने दिल्ली से वहां पहुंचा। ग्रहण के समय हमने भिंड में हवा के तापमान और सूर्य की रोशनी की तीव्रता में बदलाव नापे। इस लेख में यही देखेंगे कि यह सब कैसे किया हमने और क्या नतीजे सामने आए।

हवा के तापमान में बदलाव

सबसे पहले देखें कि हमने हवा का तापमान कैसे नापा और इसके लिए हमें किन-किन बातों का विशेष ध्यान रखना पड़ा।

हम सभी पारे के थर्मामीटर से परिचित हैं। ये थर्मामीटर पारे के इस गुणधर्म के आधार पर काम करता है कि पारा अधिकांश अन्य पदार्थों की तरह गर्म होने पर फैलता है और ठंडा होने पर सिकुड़ता है। जब हम थर्मामीटर को गर्म पानी में डालते हैं तो उसका पारा पानी से गर्मी (ऊर्जा) लेकर फैलता है और इसलिए ऊपर चढ़ता हुआ दिखता है। पारे का फैलना तब तक जारी रहता है जब तक पारे का तापमान पानी के तापमान के बराबर न हो जाए। ऐसी स्थिति पहुंचने पर थर्मामीटर पर बने पैमाने पर यही तापमान पढ़ लिया जाता है। यानी थर्मामीटर को खुद से ज़्यादा गर्म वस्तु का तापमान बताने के लिए अपना तापमान बढ़ाना पड़ता है जिसके लिए उसे ऊर्जा चाहिए, जो उसे उसी वस्तु से मिलती है जिसका तापमान लिया जा रहा है। ठीक इसका उल्टा होता है जब ठंडी चीज़ का तापमान नापते समय पारा अपना तापमान उस वस्तु को देकर खुद को सिकोड़ता है। इससे यह समझ में आता है कि जिस थर्मामीटर को अपना तापमान बढ़ाने या घटाने के लिए जितनी कम ऊर्जा चाहिए या देनी पड़ेगी वह उतना ही बेहतर थर्मामीटर होगा। इसी से एक और बात निकलती है कि थर्मामीटर कितनी तेज़ी से अपना तापमान बदल सकता है, यह दो बातों पर निर्भर करता है:

1. नापने वाले उपकरण और जिस वस्तु का तापमान नाप रहे हैं, दोनों के तापमान में कितना अंतर है। जब ये अंतर ज़्यादा होता है तो थर्मामीटर तेज़ी से अपना तापमान बदल लेता है (यानी पारा जल्दी से फैलता या सिकुड़ता है)। लेकिन यह अंतर कम हो तो थर्मामीटर तापमान दिखाने में ज़्यादा समय लेगा। आपने खुद भी देखा होगा कि बुखार तेज़ हो तो थर्मामीटर का पारा झट से चढ़ जाता है, और यदि बुखार कम हो तो थर्मामीटर का पारा धीरे-धीरे ही चढ़ता है।
2. दूसरा कारक है थर्मामीटर की प्रकृति – यानी कोई थर्मामीटर तापमान के किसी एक अंतर पर अपना तापमान एक डिग्री सेल्सियस बढ़ाने या घटाने के लिए एक मिनट लगाता है तो दूसरा पांच सेकंड में ही ऐसा कर सकता है।

आमतौर पर इस्तेमाल होने वाले पारे के थर्मामीटर में दो या तीन डिग्री के तापमान के अंतर पर अपना तापमान बदलने में एक मिनट के आसपास समय लगता है। हमें मालूम था कि पूर्ण सूर्य ग्रहण सिर्फ एक मिनट ही रहने वाला है इसलिए अगर ऐसा थर्मामीटर इस्तेमाल करते तो पूर्ण सूर्य ग्रहण के समय के तापमान में बदलाव नापना संभव न होता क्योंकि अभी पारे का तापमान बदल भी न पाता कि पूर्ण सूर्य ग्रहण खत्म हो चुका होता।

इन दोनों बातों को ध्यान में रखकर हमने हवा का तापमान नापने के लिए एक इलेक्ट्रॉनिक सेंसर का इस्तेमाल किया, जिसे अपना तापमान बदलने के लिए बहुत कम ऊर्जा और समय चाहिए। ये सेंसर एक इंटीग्रेटड सर्किट (आई.सी.) है जिसका नंबर ए.डी.-590 है। इस सेंसर को एक सर्किट के साथ लगा कर कम्प्यूटर से जोड़ दिया गया। इससे हर सेकंड के अंतराल पर तापमान रिकॉर्ड किया जा सका।

इन्हीं में से कुछ आंकड़े तालिका-2 में दिए गए हैं।

इन आंकड़ों को देखने पर कुछ दिलचस्प बातें सामने आती हैं:

1. जैसे-जैसे ग्रहण पूर्णता की ओर बढ़ता गया, तापमान गिरता गया और पूर्ण ग्रहण समाप्त होते ही फिर से बढ़ने लगा। तापमान में कुल गिरावट 7 डिग्री

तालिका-2: ग्रहण के दौरान हवा के तापमान में दिखने वाले परिवर्तन

स्थितियां	समय	तापमान
आंशिक ग्रहण शुरू होने के 30 मिनट बाद	7:55:00	23
आंशिक ग्रहण शुरू होने के एक घंटे बाद	8:25:00	23
पूर्ण ग्रहण शुरू होने से 5 मिनट पहले	8:30:00	19
पूर्ण ग्रहण शुरू होते ही	8:35:19	17
पूर्ण ग्रहण के दौरान		16
पूर्ण ग्रहण खत्म होते ही	8:36:18	16
पूर्ण ग्रहण खत्म होने के 5 मिनट बाद	8:40:00	19
पूर्ण ग्रहण खत्म होने के 10 मिनट बाद	8:45:00	22
आंशिक ग्रहण खत्म होते ही	9:55:00	26
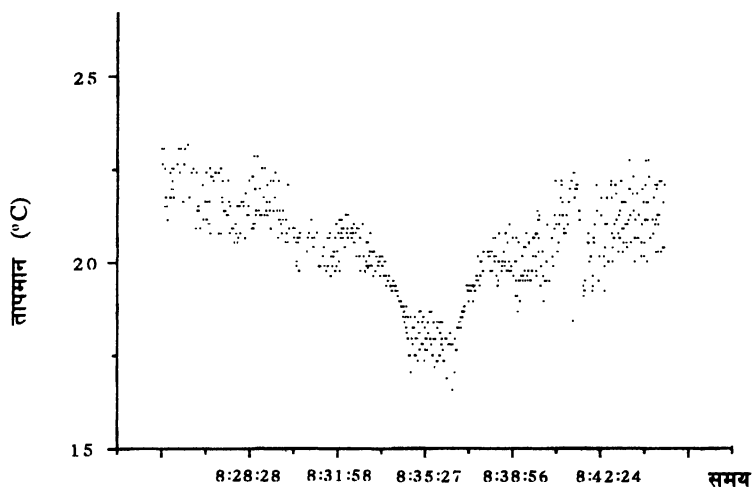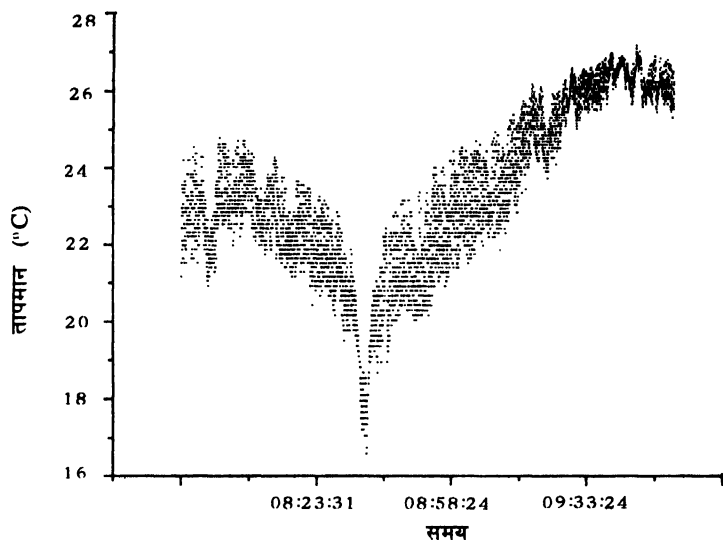
ग्राफ 1 और 2: एक इलेक्ट्रॉनिक सेंसर का इस्तेमाल करके हवा का तापमान नापा गया। इस सेंसर को एक सर्किट की मदद से कम्प्यूटर से जोड़ा गया जिससे हर सेकेंड का तापमान दर्ज होने लगा।
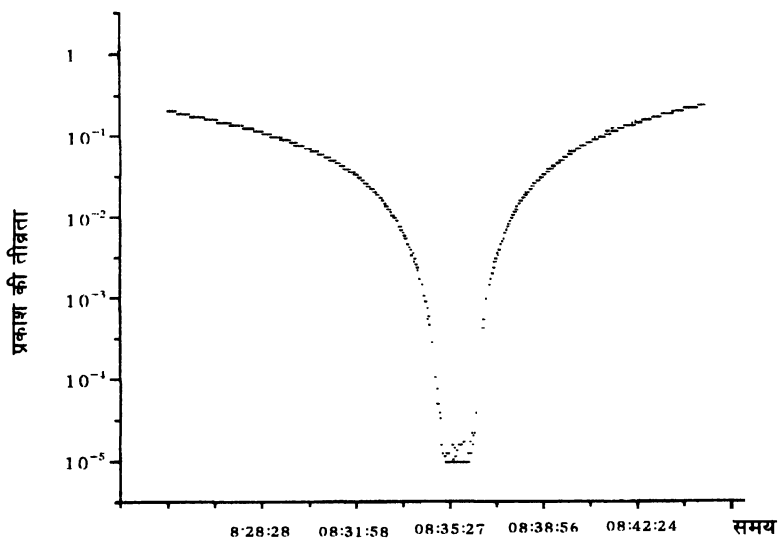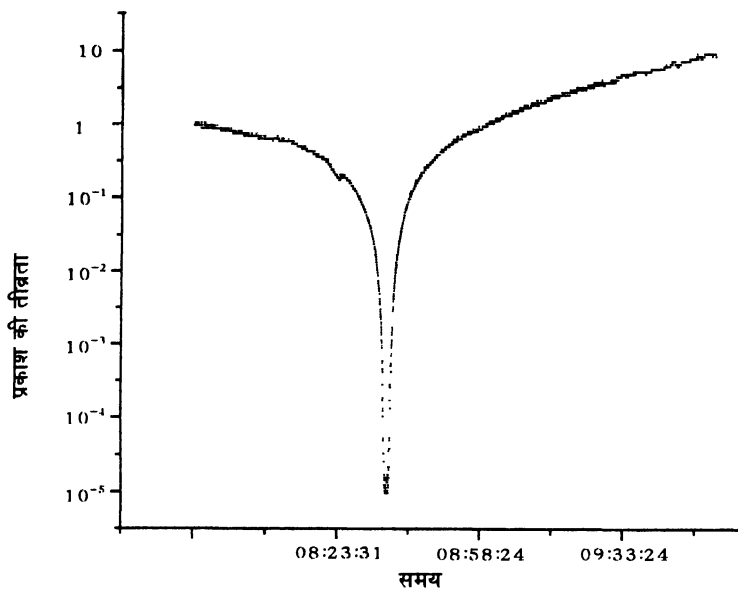
ग्राफ 3 और 4: **रोशनी की तीव्रता नापने के लिए फोटो डायोड को कम्प्यूटर के साथ जोड़ दिया गया। इससे हर सेकेंड पर रोशनी की तीव्रता का पता चल सकता था।**

सेल्सियस की हुई।

2. पूर्ण सूर्य ग्रहण से 5 मिनट पहले से पूर्ण ग्रहण होने तक (8:30:00 से 8:35:19 तक) तापमान में एकदम से 3 डिग्री सेल्सियस की गिरावट आई और इसी तरह पूर्ण ग्रहण समाप्त होने के बाद सिर्फ 5 मिनट में (8:36:18 से 8:40:00 तक) तापमान फिर से 3 डिग्री सेल्सियस बढ़ गया।
3. ग्राफ-2 में हर बिन्दु बताता है कि किस समय उस हवा का तापमान कितना था जहां पर वह सेंसर रखा हुआ था। पर हम किसी एक समय पर (उदाहरण के लिए 8:28':28" पर) तापमान पढ़ना चाहें तो पाएंगे कि बहुत से बिन्दु उस समय का तापमान दर्शा रहे हैं यानी तापमान 19 डिग्री से 21 डिग्री सेल्सियस तक कुछ भी पढ़ा जा सकता है। यह छितराव किसी गड़बड़ी की वजह से नहीं है। इसका कारण यह है कि हम हवा का तापमान नाप रहे हैं और हवा स्थिर नहीं है। इसलिए जिस जगह पर हमारा सेंसर लगा है वहां बड़ी तेज़ी से हवा का सेम्पल बदल रहा है और इसी कारण तापमान भी। और हमारा संवेदनशील सेंसर इस बदलाव को झट से परख लेता है।

आमतौर पर कहा जाता है कि सूर्य ग्रहण के समय वातावरण शांत हो जाता है, पर इस ग्राफ से तो यह बात ठीक नहीं लगती।

सूर्य की रोशनी में बदलाव:

ग्रहण के समय रोशनी की तीव्रता में बदलाव रिकॉर्ड करने के लिए हमने एक 'फोटो डायोड' चुना। इसे एक सर्किट में लगाया जिससे यह रोशनी में 1,00,000वें हिस्से तक के परिवर्तन को नाप सके। इसे कम्प्यूटर के साथ जोड़कर हर सेकंड पर रोशनी की तीव्रता रिकॉर्ड की गई।

गणना करने और ग्राफ बनाने के लिए ग्रहण खत्म होने के बाद 10:10:00 बजे रोशनी की तीव्रता को 'दस' मान लिया गया। इसे आधार मानकर समय के विभिन्न बिन्दुओं पर आपेक्षिक तीव्रता की गणना की गई। ग्राफ-3 और ग्राफ-4 में समय के साथ रोशनी की तीव्रता का बदलाव दिखाया गया है। इन्हीं में से कुछ आंकड़े तालिका-3 में दिए गए हैं।

इन दोनों ग्राफ और नीचे दी गई तालिका से स्पष्ट है कि:

1. आंशिक ग्रहण के समय प्रकाश में बदलाव बहुत कम हुआ।
2. पूर्णता के मात्र 10 मिनट पहले प्रकाश की तीव्रता में महत्वपूर्ण बदलाव शुरू हुआ। आंशिक ग्रहण शुरू होने और पूर्णता से 10 मिनट पहले तक (लगभग 55 मिनट में) प्रकाश की तीव्रता 100वां हिस्सा रह गई। लेकिन पूर्णता के

तालिका-3

स्थिति	समय	प्रकाश की तीव्रता
आंशिक ग्रहण शुरू होने के 30 मिनट बाद	7:55	0.8
पूर्ण ग्रहण के 10 मिनट पहले	8:25	10^{-2}
पूर्ण ग्रहण के समय	8:36	10^{-5}
पूर्ण ग्रहण के 10 मिनट बाद	8:46	10^{-2}

10 मिनट पहले से पूर्णता तक (यानी 10 मिनट में) प्रकाश की तीव्रता उसका भी 1000वां हिस्सा रह गई। बिल्कुल ऐसे ही पूर्णता समाप्त होने के 10 मिनट बाद प्रकाश की तीव्रता 1000 गुना बढ़ गई।

बिना नापे भी तो हमने महसूस किया था कि पूर्ण ग्रहण शुरू होने के कुछ समय पहले बड़ी तेज़ी से रोशनी कम हुई थी।

तस्वीर:

अंत में यह मज़ेदार तस्वीर। आइए देखें इसे किस तरह से लिया गया है। अगर कैमरे से एक के बाद दूसरी तस्वीर खींचनी हो तो रील आगे बढ़ानी पड़ती है। प्रायः कैमरों में ऐसी व्यवस्था होती है कि जब तक रील आगे न बढ़ा दी जाए अगली तस्वीर खींची ही नहीं जा सकती। लेकिन अधिकांश पुराने कैमरों में ऐसी व्यवस्था नहीं होती थी, जिससे अगर रील बढ़ाना भूल जाएं तो रील के पिछले फ्रेम पर ही दूसरी तस्वीर खिंच जाती थी और अगली-पिछली दोनों फोटो बरबाद हो जाती थीं।

दिलचस्प बात यह है कि ऊपर दिखाई गई तस्वीर ऐसे ही कैमरे से ली गई है जिससे रील को आगे बढ़ाए बिना एक ही फ्रेम पर बार-बार फोटो खींच पाना संभव था। यहां गड़बड़ नहीं हुई बल्कि कैमरे की इसी खूबी के कारण एक ही फ्रेम पर ग्रहण की विभिन्न स्थितियों की फोटो खींची जा सकीं।

इसके लिए सूर्य ग्रहण से पहले कैमरे के लैंस पर एक फिल्टर (कैमरे की
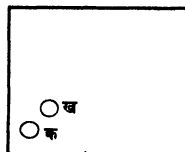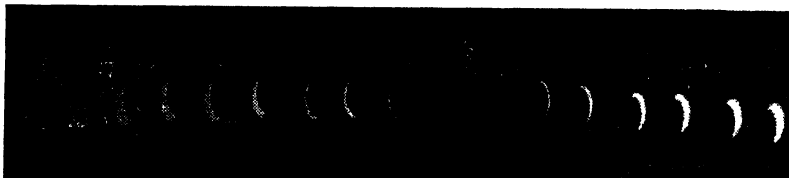
एक पर अनेक:
कैमरे को कुछ इस तरह से जमाया गया कि सूर्य की छवि पहले फिल्म के एक कोने पर बनी (बिन्दु 'क')। रोल को आगे बढ़ाए बिना थोड़ी-थोड़ी देर बाद फोटो खिंचते गए, अगली छवि थोड़ी आगे बनी (बिन्दु 'ख')। इस तरह से एक ही फिल्म पर सूर्यग्रहण की विभिन्न स्थितियों के फोटो की एक श्रृंखला बन जाती है। रेखाचित्र के बाईं ओर दिया गया फोटो सन् 1980 के पूर्ण सूर्य ग्रहण का है। यह फोटो भी इसी तरह से लिया गया है। सबसे ऊपर दिया गया फोटो भिण्ड में 24 अक्टूबर 1995 को एक साधारण कैमरे से लिया गया है।

इस्तेमाल की हुई रील) चढ़ा दिया गया। फिर कैमरे के लैंस को कुछ इस तरह फोकस किया कि सूर्य की छवि फिल्म के एक कोने में बने (चित्र में दिखाया गया 'क' बिन्दु)। अब कैमरे को हिलाए बिना और रील को आगे बढ़ाए बिना हर पांच मिनट बाद फोटो लेते गए। अगली छवि 'ख' बिन्दु पर बनी और हर अगली छवि थोड़ी-थोड़ी दूरी पर बनती गई। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि पृथ्वी लगातार घूम रही है और इसलिए सूर्य की तुलना में पृथ्वी की स्थिति लगातार बदल रही है। इस तस्वीर से यह आभास मिलता है कि सूर्य की तुलना में इन दो घंटों के दौरान ये स्थिति कैसे बदल रही है। बीचों-बीच का हिस्सा जहां कुछ नहीं दिख रहा, पूर्ण सूर्य ग्रहण दर्शा रहा है।

शशि सक्सेना – दीनदयाल उपाध्याय कॉलेज में रसायन शास्त्र पढ़ाती हैं।
प्रमोद उपाध्याय – राष्ट्रीय प्रतिरक्षा संस्थान में शोध करते हैं।

फोटो डायोड

फोटो डायोड एक खास तरह का डायोड है। डायोड एक इलेक्ट्रॉनिक पुर्ज़ा है जो विद्युत धारा को एक ही दिशा में बहने देता है। डायोड के संकेत में तिकोना तीर विद्युत धारा की दिशा दिखाता है। इस बात पर गौर करने के लिए चित्र में दिया परिपथ देखिए। इसमें डायोड और सेल के ध्रुव इस तरह लगे हैं कि बल्ब जलने लगेगा। अब यदि इस डायोड को उल्टा करके परिपथ में लगा दें तो विद्युत धारा नहीं बहेगी और बल्ब नहीं जलेगा। असल में ऐसा नहीं है कि उल्टा लगाने पर बिल्कुल भी विद्युत नहीं बहेगी। ऐसा करने पर भी धारा बहती ज़रूर है, परन्तु बहुत ही कम।

अब यदि डायोड के अंदर की बनावट को खोलकर कांच के खोल में रखा जाए और डायोड को उल्टा लगा दिया जाए तो बहने वाली विद्युत धारा उस पर पड़ने वाली रोशनी पर निर्भर करती है। इस तरह लगाने पर डायोड पर पैदा हुई वोल्टेज उस पर पड़ रही रोशनी पर निर्भर करती है (लॉगेरिथमिक अनुपात में)। इस तरह एक डायोड के अंदर की बनावट को कांच में बंद करके उस से रोशनी की मात्रा नापी जा सकती है। ऐसे डायोड को फोटो डायोड कहते हैं।

और एक नज़र इधर भी . . . . .

जहां पूर्ण सूर्य ग्रहण दिखाई देने वाला था वहां तो अनेकों वैज्ञानिक व बहुत से अन्य लोग साजो-सामान के साथ पहुंच रहे थे। नीमका थाना, भरतपुर, भिंड, फतेहपुर सीकरी, इलाहाबाद और डायमंड हार्बर से आए दिन अखबारों के ज़रिए खबरें मिल रही थीं कि क्या-क्या तैयारियां चल रही हैं। लेकिन बहुत से लोगों में ग्रहण को लेकर खौफ था और कई लोगों ने ग्रहण के समय घर से बाहर न निकलने का फैसला किया था। ऐसी ही मिली-जुली स्थिति होशंगाबाद और बैतूल जैसी जगहों में भी थी।

काफी दिन पहले से स्कूलों में बच्चों से सम्पर्क साध कर तरह-तरह की बातचीत, गप-शप करने पर इस इलाके में भी कई लड़के-लड़कियों ने ग्रहण को देखने और उस दौरान विभिन्न स्थितियों को नोट करने में रुचि दिखाई थी। उनके साथ प्रयोग करते
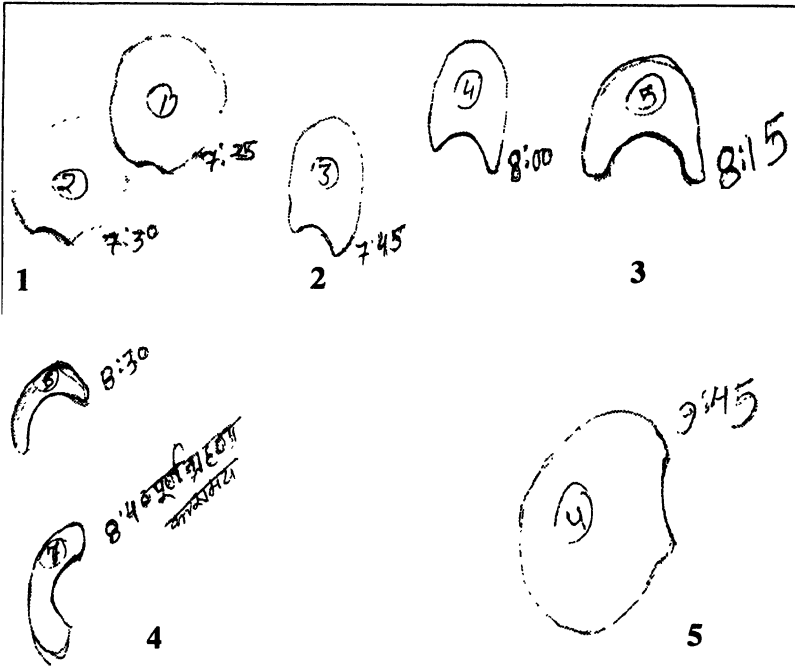
शाहपुर के एक छात्र द्वारा ट्रेस की गई आकृतियां

हुए ग्रहण देखने के विभिन्न तरीकों पर भी चर्चाएं हुईं कि किस तरह सूर्य का बिम्ब बनाकर दीवार पर लगाए कागज़ पर उसे ट्रेस किया जा सकता है, किताब में बनवाए गए पिन होल कैमरे का इस्तेमाल ग्रहण देखने के लिए कैसे किया जा सकता है ...।

ग्रहण के दिन पलिया पिपरिया (ज़िला होशंगाबाद) और शाहपुर (ज़िला बैतूल) के छात्रों ने अपने शिक्षकों की मौजूदगी में सूर्य ग्रहण की अलग-अलग स्थितियां ट्रेस कीं और उनका समय भी नोट किया। जैसा कि चित्रों से स्पष्ट है कि सूर्य के लगातार हिलते बिम्ब को सफाई के साथ खींचने में ये बाल-वैज्ञानिक पर्याप्त कौशल नहीं दिखा पाए। लेकिन यहां चित्रों की सफाई से भी महत्वपूर्ण बात थी कि बच्चों ने सूर्य ग्रहण को एक सामान्य प्राकृतिक घटना के रूप में देखते हुए विभिन्न तरह के फिल्टर बनाकर उनके ज़रिए, पिन होल कैमरे में से, दीवार पर बिम्ब बनाकर .... और भी पता नहीं कितनी तरह देखा।

— माधव कलकर

कक्षा 9 के बच्चों के बीच एक सर्वे

पूर्व समझ जानना ज़रूरी

● ए. बी. सक्सेना

क्यों लगाया बच्चों ने गलत पर निशान?

आमतौर पर हम जब कक्षा में पढ़ाते हैं तो यह मान कर चलते हैं कि बच्चे स्कूल में कोरा दिमाग लेकर आते हैं और जिस विषय के बारे में हम बात करने जा रहे हैं (जैसे बल, वेग या प्रकाश) उन्हें लेकर उनकी कोई पूर्व-अवधारणाएं नहीं हैं। इससे यह मान्यता बनती है कि उनके खाली दिमाग को शिक्षक किसी भी विचार से भर सकता है। हम यह भी मान लेते हैं कि सीखते समय बच्चे खुद कुछ नहीं सोचते बल्कि शिक्षक के विचारों को वैसा-का-वैसा ग्रहण करते हैं और अगर शिक्षक अच्छा पढ़ाए तो बच्चों को विषय की अवधारणाओं को समझने में कठिनाई नहीं होगी।

बच्चों के पूर्व ज्ञान तथा उनके अपने अनुभवों की अवहेलना अनेक कठिनाइयों को जन्म देती है। बच्चों का पूर्व ज्ञान संभव है कि 'वैज्ञानिक न हो' या उसमें कमियां हों; लेकिन फिर भी वह उनका अपना होता है तथा उनके अनुभवों पर आधारित होता है। इसी कारण शिक्षक जब 'वैज्ञानिक ज्ञान' की बात कक्षा में करता है तो अनेक बच्चों को कठिनाई होती है।

कुछ बच्चों के लिए यह नई दुनिया में प्रवेश के समान है जिससे वे ताल-मेल नहीं बैठा पाते। कुछ ऐसे बच्चे भी होते हैं जो दो तरह के विचारों को एक साथ दिमाग में लेकर चलते हैं – एक वे जो शिक्षक या पुस्तक के सवालों का उत्तर देने के लिए उपयुक्त हैं तथा दूसरे, जो उनकी अपनी दुनिया को समझने

के लिए ठीक लगते हैं। और यही प्रक्रिया शाला स्तर से महाविद्यालय स्तर तक चलती है। बच्चों के विचारों पर ध्यान देना अत्यंत ज़रूरी है अन्यथा कारगर होने की संभावना कम होती है। ऐसा इस कारण भी होता है कि छात्र के 'पूर्वाग्रह' शिक्षक की बात का 'सही' अर्थ निकालने में अड़चन डालते हैं और अक्सर इस कारण छात्र जो समझते हैं वह शिक्षक की मंशा से भिन्न होता है। इसकी वजह से यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षक छात्रों की पूर्व-धारणाओं को जाने।

बल, त्वरण तथा वेग के संबंध में कक्षा 9 के बच्चों के विचार जानने के लिए हमने उन्हें कुछ सवाल और विकल्प दिए। बाद में विद्यार्थियों द्वारा दिए गए उत्तरों का विश्लेषण किया।

प्रश्न 1: चित्र में एक वस्तु का विस्थापन समय वक्र दिखाया गया है। वस्तु का वेग शून्य कब होगा?

(अ) बिन्दु क पर
(ब) बिन्दु ख पर
(स) बिन्दु ग पर
(द) बिन्दु घ पर

इस प्रश्न के उत्तर में बहुत से छात्रों ने पहले या तीसरे विकल्प पर निशान लगाया। उनका तर्क यह होता था कि चित्र में बिन्दु क तथा/या ग पर विस्थापन शून्य है इसलिए सूत्र वेग = विस्थापन/समय के अनुसार इन बिन्दुओं पर वेग शून्य है।

प्रश्न 2: चित्र में वस्तुओं का विस्थापन विभिन्न समय पर सरल रेखा अ, ब, स तथा द द्वारा दिखाया गया है। उनके वेग के संबंध में कौन-सा कथन सही है?

(अ) वस्तु अ तथा स का वेग बिन्दु क पर समान है।
(ब) वस्तु अ तथा द का वेग समान है।
(स) स का वेग अधिकतम है।
(द) ब का वेग न्यूनतम है।
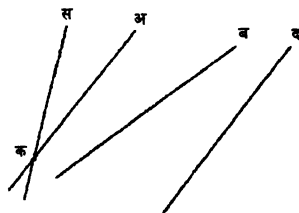
इस प्रश्न के उत्तर में अनेक छात्र पहले विकल्प पर निशान लगाते हैं जबकि 'अ' तथा 'स' का वेग किसी भी क्षण समान नहीं है।

प्रश्न 3: एक गेंद को ऊपर की ओर फेंका जाता है। चित्रानुसार यह ऊपर जाकर वापस नीचे गिरती है। जब यह गेंद बिन्दु-1 पर थी तो इस पर कौन-कौन से बल लग रहे थे? (हवा के घर्षण को अनदेखा करें।)

(अ) हाथ द्वारा लगाया बल
(ब) गुरुत्वाकर्षण बल
(स) गुरुत्वाकर्षण तथा हाथ द्वारा लगाया बल
(द) प्रतिकर्षण बल

यह देखा गया है कि अनेक विद्यार्थी यह सोचते हैं कि जब तक गेंद ऊपर जा रही है उस पर हाथ का बल लग रहा है और जब हाथ द्वारा लगाया गया बल समाप्त हो जाता है तो गेंद ऊपर जाना बंद कर देती है।

प्रश्न 4: प्रश्न 3 में बिन्दु 'क' पर त्वरण की दिशा निम्नलिखित में से कौन-से चित्र में सही दिखाई गई है।

बहुत से विद्यार्थी यह सोचते हैं कि वस्तु पर लगने वाले बल की दिशा तथा उसके वेग की दिशा समान होती है। इस कारण वे पहले विकल्प को चुनते हैं।

प्रश्न 5: किसी वस्तु पर नियत बल लगाने का परिणाम क्या होता है?

(अ) नियत वेग
(ब) नियत त्वरण

(स) नियत संवेग
(द) नियत ऊर्जा

न्यूटन के द्वितीय नियमानुसार यह आसानी से देखा जा सकता है कि नियत बल का परिणाम नियत त्वरण होगा; लेकिन छात्रों के उत्तर में अक्सर नियत वेग या संवेग देखा जाता है।

प्रश्न 6: एक वस्तु को पृथ्वी 15 न्यूटन के बल से आकर्षित कर रही है। उस वस्तु द्वारा पृथ्वी को आकर्षित करने वाला बल कितना होगा?

(अ) शून्य
(ब) 15 न्यूटन से कम लेकिन शून्य नहीं
(स) 15 न्यूटन
(द) 15 न्यूटन से अधिक

न्यूटन का तीसरा नियम जानने के बाद भी अनेक विद्यार्थी यह सोचते हैं कि वस्तु पृथ्वी को नहीं खींचती है, और यदि खींचती है तो बहुत थोड़े बल से।

प्रश्न 7: समान संख्याओं से दो वस्तुओं 'क' तथा 'ख' की स्थिति समान समय पर एक सेकन्ड के अंतर से दिखाई गई है। दोनों वस्तुओं के संबंध में कौन-सा कथन सही है।

(अ) क का वेग बढ़ रहा है
(ब) ख का वेग बढ़ रहा है
(स) क तथा ख का वेग कभी बराबर नहीं है
(द) क तथा ख का वेग '2' पर बराबर है
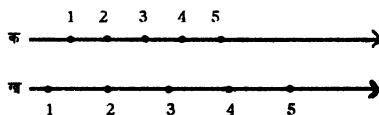
यह स्थिति उसी प्रकार की है जबकि एक कार के पीछे से आकर दूसरी कार आगे निकल जाती है। फिर भी बहुत से छात्र यह सोचते हैं कि '2' पर दोनों का वेग बराबर है।

प्रश्न 8: एक कंकड़ को 'क' बिन्दु पर स्थिर पकड़कर अचानक स्वतंत्रतापूर्वक गिरने के लिए छोड़ दिया जाता है। छोड़े जाने के बाद 'क' बिन्दु पर कंकड़ का त्वरण कितना था?

(अ) शून्य
(ब) बहुत कम, लेकिन शून्य नहीं
(स) अनिश्चित
(द) 'g' के बराबर

इस प्रश्न के उत्तर में अधिकांश बच्चे सोचते हैं कि 'क' बिन्दु पर कंकड़ का त्वरण शून्य था क्योंकि वहां पर वेग शून्य है। यहां पर यह ध्यान देने की बात है कि यह बिलकुल भी आवश्यक नहीं है कि वेग शून्य होने पर त्वरण भी शून्य हो। इसके विपरीत त्वरण शून्य होने का परिणाम यह होगा कि वेग परिवर्तन नहीं होगा तथा वस्तु यदि स्थिर अवस्था में है तो स्थिर अवस्था में ही रहेगी।

उपरोक्त प्रश्न उदाहरण मात्र हैं। इसी प्रकार किसी भी अवधारणा पर प्रश्न बनाकर शिक्षक छात्रों के विचार जान सकते हैं। ऐसे विकल्प वाले सवाल पूछकर छात्रों के विचारों को बहुत सीमित रूप से जानने में मदद मिलती है क्योंकि छात्र केवल गलत उत्तर पर निशान मात्र लगाते हैं। छात्रों के विचार अधिक गहराई से जानने के लिए, उनसे विकल्प पर निशान लगाने के अलावा संक्षेप में कारण भी लिखने को कहा जा सकता है; कि किस वजह से उन्होंने ऐसा उत्तर दिया है। इससे यदि उनके दिमाग में कोई गलत-धारणा है तो उसका पता लगता है। कारण और भी गहराई से जानने के लिए शिक्षक विद्यार्थियों से बातचीत कर सकते हैं।

छात्रों की धारणाएं जानने के बाद शिक्षक प्रमुख गलत-धारणाओं को ध्यान में रखकर उनके अनुसार भविष्य में अपने शिक्षण में आवश्यक परिवर्तन कर सकता है। इस संबंध में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि अधिकतर गलत-धारणाएं इतनी गहरी होती हैं कि शिक्षण में केवल इनका उल्लेख कर देने मात्र से छात्रों की समझ में फर्क नहीं पड़ेगा। इसके लिए आवश्यक है कि कुछ ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न की जाएं कि छात्र अपने विचार की सीमा और उनके कारगर न होने की परिस्थिति को स्वयं अनुभव करें तथा उसमें परिवर्तन की आवश्यकता को खुद महसूस करें।

ए. बी. सक्सेना – रीजनल इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन में भौतिकी के प्राध्यापक।

सपना तो है सिर्फ सपना

मार्टिन गाडनर

लगता है कि अब सपनों के संसार से फ्रायड के विदा होने का समय आ गया है। रेम-नींद की खोज के बाद सपनों को लेकर जो गहन अनुसंधानों का सिलसिला चल पड़ा है उनमें फ्रायड के सपनों के सिद्धांतों को लगभग नकारा जा रहा है। हालांकि ये शोध भी सपनों को लेकर कोई बहुत स्पष्ट खुलासा नहीं करते लेकिन यह तो तय है कि सपनों के कोई छुपे अर्थ नहीं होते। इसके साथ ही यह जानने की कोशिश भी है कि हम सपने क्यों देखते हैं। सपनों को लेकर तरह-तरह के मतों और अनुसंधानों पर विस्तृत चर्चा।

माना जा रहा है कि सपने से संबंधित फ्रायड ओर कार्ल जंग के सिद्धांत लगभग पूरी तरह से काल्पनिक अटकलबाजी थे। इनके पीछे कोई प्रयोगसिद्ध आधार न था। प्रयोगशाला में सपनों की तफशीश के काम को 1952 में मुख्य सफलता मिली। यही वह साल था जबकि शिकागो विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान के एक स्नातक, इयूजिन आरिरिंसकी ने संयोगवश आर. ई. एम. (Rapid Eye Movement) की खोज की। आर. ई. एम. (रेम) यानी सोते समय पुतलियों का तीव्र गति से चलना, जो कि गहन नींद के सपनों का हमसफर है।

आरिरिंसकी ने अपने सोते हुए 10 साल के बच्चे की आंख के पास इलेक्ट्रोड लगाए। और फिर हैरत में पड़ गया। मशीन ने ग्राफ पेपर पर काफी घुमावदार चित्र अंकित करने शुरू कर दिए। आरिरिंसकी और विश्वविद्यालय के निंद्रा अनुसंधान के निदेशक कलेतमैन ने अनुसंधान का काम जारी रखा। इन्होंने पाया कि नॉन-रेम (नींद का वह हिस्सा जिसमें पुतलियां नहीं घूमतीं) के अस्पष्ट सपनों के मुकाबले रेम नींद में देखे सपने ज़्यादा जीवंत व स्पष्ट थे। सपनों की अबूझी दुनिया की यह एक महान खोज थी।

जल्द ही स्पष्ट हो गया कि रात भर में रेम नींद टुकड़ों-टुकड़ों में आती है। साधारणत: चार से छः बार और हर बार इसकी अवधि 10 मिनट से एक घण्टे के बीच होती है। ऐसे भी कई लोग हैं जिन्हें लगता है कि सपनों के संसार से उनका कोई वास्ता ही नहीं है। उनका सोचना था कि उन्हें सपने आते ही नहीं हैं और अगर आते भी हैं तो बहुत ही कम। ऐसे लोग भी हैरत में पड़ गए जब रेम नींद से जगाए जाने पर उन्हें सपने साफ-साफ याद रहे।

अध्ययन के दौरान कई नए तथ्य भी सामने आए कि दुस्वप्न और नींद में चलना केवल 'नॉन-रेम' नींद के दौरान ही होता है। इसी तरह यह विश्वास कि एक लम्बा स्वप्न केवल कुछ सेकेण्ड ही चल सकता है मिथक साबित हुआ।

इसी के साथ दुनिया भर की प्रयोगशालाओं में 'रेम-नींद' पर गहन अनुसंधानों का सिलसिला चल निकला। अब तक जांचे-परखे लगभग सभी स्तनपाई जीवों में 'रेम-नींद' के कालखंड पाए गए। इसमें चमगादड़, छछूंदर और व्हेल शामिल हैं। पर एक विचित्र अपवाद रहा है ऑस्ट्रेलिया का चींटी खाने वाला एक जीव (ant eater)।

पाया गया कि सरीसृप (रेंगने वाले जीव) 'रेम-नींद' से महरूम रहते हैं परन्तु लगता है पक्षियों में 'रेम-नींद' बहुत ही छोटे-छोटे टुकड़ों में आती है, वह भी तब जब उनका सिर पंखों के नीचे होता है। नींद के इन टुकड़ों की अवधि कुछ सेकेण्ड तक ही सीमित रहती है। कुत्ते और बिल्ली स्पष्ट रूप से 'रेम नींद' में सपनों का लुत्फ उठाते हैं। सपने देखती हुई बिल्ली की पलकों को उठाकर उनके आंख के गोलों को तेज़ी से आगे-पीछे होते हुए देखा भी जा सकता है।

यकीनन रेम सपनों का कोई-न-कोई फायदा तो होगा ही, वरना प्रकृति उसको ईजाद करने की ज़हमत क्योंकर गवारा करती। वैसे स्पष्ट रूप से उनका क्या काम है, यह तो अभी भी एक पहेली बना हुआ है। एक युक्तिसंगत दलील यह हो सकती है कि रात के समय जब भोजन खोजना कठिन हो जाता है, स्तनपाई जीव अपने शरीर और दिमाग को आराम फरमाने की मोहलत देते हैं। और फिर सूरज उगने तक यह सिलसिला जारी रहता है। कुछ स्तनपाई तो पूरी सर्दी ही सुषुप्तावस्था में गुज़ार देते हैं। पर इससे भी सपनों की उपयोगिता के बारे में खास कुछ जानकारी नहीं मिलती।

सपने और कम्प्यूटर

दिमाग एक जैविक कम्प्यूटर से अधिक कुछ भी नहीं, कम्प्यूटर क्रांति और कृत्रिम समझ (artificial intelligence) के अनुसंधानकर्त्ताओं के इस मत ने सपनों के बारे में भी कम्प्यूटर जनित परिकल्पनायों की अगुआई की है। 1964 में इस संबंध में एक लेख छपा था, ब्रिटेन से निकलने वाली पत्रिका 'न्यू साइंटिस्ट' में – 'ड्रीमिंग एन एनॉलॉजी फ्रॉम कम्प्यूटर'। लेखक थे दो वैज्ञानिक, क्रिस्टोफर रिची इवान्स और एडगर आर्थर न्यूमेन।

इवान्स-न्यूमेन का मानना है कि कम्प्यूटर की तरह दिमाग भी अनुपयोगी जानकारी से बौरा जाता है। जैसे कम्प्यूटर की याददाश्त से गैरज़रूरी कचरे को हटाने के लिए नियमित सफाई की ज़रूरत होती है वैसे ही हमारा दिमाग भी समय-समय पर झाड़-पोंछ मांगता है। नींद एक प्रक्रिया है जिसके ज़रिए हमारा सोता दिमाग सुरक्षित रखने लायक जानकारी को लम्बे समय तक याद रखी जाने वाली स्मृति (long term memory) में डाल देता है। साथ ही 'कम समय तक याद रखने

वाली स्मृति' से उन सब बातों को मिटा देता है जो तंत्रिकाओं के मार्ग में अडंगा डाल सकती हैं। अब ऐसी बातें याद रखने का मतलब भी क्या है कि कल जो जुराब पहनी थी उसका रंग क्या था; कल दोपहर खाने में क्या खाया था या किसी सामान्य बातचीत के दौरान आपने क्या-क्या कहा था?

ऐसे कचरे को हटाने के लिए जैसे ही विद्युत आवेश दिमाग के चारों ओर तीव्र गति से घूमता है, इसका स्पन्दन पड़ोसी तंत्रिका कोशिकाओं को उत्तेजित कर देता है। क्योंकि पड़ोस की कोई भी कोशिका किसी भी क्रम में उत्तेजित हो सकती है इसलिए बेतरतीब फैली हुई यह जानकारी सपने में दिखाई देने लगती है। हमारा अचेतन दिमाग इन बिम्बों को किसी तरह के सुसंगत दृश्यों में ढालने की भरसक कोशिश करता है, पर चूंकि ये बेतरतीबी से फैले रहते हैं, हमारे सपने की कहानी अत्यन्त बेतुकी व अंट-शंट होती है। और इस तरह हर रात हम एक-दो घण्टों के लिए एक तरीके से बावले हो जाते हैं!

'फ्रायड', सेक्स और 'जंग'

फ्रायड का मानना था कि हमारे अचेतन में दबी इच्छाएं सपनों में भारी छद्मवेश में व्यक्त होती हैं। ज़्यादातर इच्छाएं यौन संबंधी होती हैं और उसका संबंध बचपन में घटी किसी घटना से होता है। फ्रायड का मानना था कि अगर ये इच्छाएं इस तरह से भेष बदलकर न आएं तो हमारी नैतिकता को ऐसा झटका लगेगा कि हम जाग उठेंगे।

कार्ल जंग इन बातों को महत्व न देते हुए मानते हैं कि फ्रायड दबी यौन इच्छाओं को कुछ ज़्यादा ही वज़न देते हैं। उनके मतानुसार सपने 'आदिरूप' का प्रतिबिम्ब होते हैं, यानी हमारे विकासात्मक भूतकाल से विरासत में मिली यादों का प्रतिबिम्ब। मसलन उड़ने और गिरने के सपने हमारे पुरखों की उस समय की यादें हैं जब वे एक से दूसरे पेड़ पर कूदते हुए कभी-कभी ज़मीन पर गिर पड़ते थे। उनके मुताबिक पीछा किए जाने वाले डरावने सपने उस समय को प्रदर्शित करते हैं जब खूंखार जानवरों के डर से हमारे पूर्वज भाग खड़े होते थे।

जंग मानते हैं कि सपने अपने में बहुत कुछ छिपाए नहीं रखते, बल्कि वे तो मानवजाति के 'सम्मिलित अचेतन'
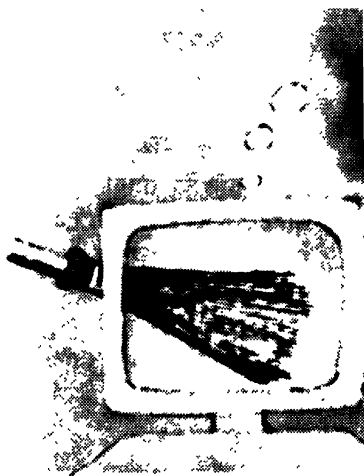
में दबी पुरातन यादों को प्रदर्शित करते हैं।

लेकिन इवान्स और न्यूमेन के लिए न तो जंग और न ही फ्रायड के सिद्धांत कोई मतलब रखते हैं। उनका मानना है कि सपने लाज़िमी तौर पर अनाप-शनाप ही होते हैं। हालांकि आशाओं व आशंकाओं का इन पर गहरा असर होता है। इसके अलावा रात के समय की घटनाएं व परिस्थितियां जैसे आवाज़ें, गंध, तापमान, शारीरिक कष्ट आदि भी सपनों को काफी प्रभावित करते हैं। हमारा दिमाग बारिश की छपछप, घूम रहे पंखे या चलते छोड़ दिए गए टी. वी. की आवाज़ जैसी जानी-पहचानी आवाज़ों को तो फिल्टर कर देता है पर अचानक पैदा हुई आवाज़ें जैसे बच्चे का रोना, बिजली की कड़क या टेलीफोन की घनघनाहट या तो हमें जगा देती है या फिर हमारे सपने में शामिल हो जाती है। अगर प्यास लगी है तो हम गटागट पानी पीने का सपना देख सकते हैं, भूख लगी है तो हो सकता है सपने में हम मालपूए डकार रहे हों। अगर पेशाब करने की ज़रूरत महसूस हो तो हमें पेशाब करने का सपना आ सकता है। इतना ही नहीं अगर सोते हुए हमारे चेहरे पर पानी के छींटे डाल दिए जाएं तो हो सकता है सपने में हम फव्वारे के नीचे नहाने लगें।

जैसे किसी काम में उलझे हुए कम्प्यूटर से गैरज़रूरी जानकारी को हटाना मुश्किल होता है खासतौर पर उस समय जब वह किसी समस्या को सुलझाने में व्यस्त हो, उसी तरह जागृत अवस्था में दिमाग की झाड़-पोंछ की कोशिश हमें पगला सकती है। क्योंकि उस समय हम विभिन्न इंद्रियों से लगातार आ रही नई जानकारी की प्रोसेसिंग में अत्यंत मशगूल होते हैं। इवान्स और न्यूमैन मानते हैं कि ऐसा नहीं है कि सपने स्मृतियों के लिए ज़्यादा जगह बना देते हैं बल्कि वे तो बीच का रास्ता साफ कर सार्थक स्मृतियों तक पहुंच को सुगम और ज़्यादा सुलभ बना देते हैं।

अनावश्यक जानकारी को अगर कम्प्यूटर से लगातार हटाया न जाए तो उसकी गति और क्षमता कम हो जाती है। उसी तरह 'रेम-सपनों' से वंचित व्यक्ति का व्यवहार असामान्य हो जाता है और वह मानसिक पीड़ा का शिकार हो जाता है – जब तक कि उसे फिर से सपनों का संसार नसीब नहीं होता। फ्रायड के अनुसार सपने नींद को सहेजकर रखते

हैं, पर यहां तो स्थिति इसके बिल्कुल उलट है। हम सपने देखने के लिए ही सोते हैं।

बच्चे और बड़ा सपनों का संसार

1980 के शुरुआती दौर में जीवविज्ञानी फ्रांसिस क्रिक* और गणितज्ञ ग्रेम मिचीसन ने सपनों को लेकर एक परिकल्पना सामने रखी। यह भी कुछ हद तक इवान्स और न्यूमैन के विचारों से मिलती-जुलती थी। । उनका कहना था कि दिमाग की करोड़ों तंत्रिकाएं बेहद जटिल जाल जैसे आपस में गुथी रहती हैं। कहना न होगा कि शायद यह ब्रह्मांड की सबसे पेचीदा रचना है।

उनका कहना था कि गैरज़रूरी स्मृतियों की बजाए, दिमाग का बाहरी सलदार हिस्सा (नियो-कोरटेक्स) आकस्मिक व अनावश्यक तंत्रकीय संयोजनों से अवरुद्ध हो जाता है। जब सामान्य स्मृतियों को यहां संजोया जाता है तो यह क्रिया इस तरह के अनावश्यक संयोजनों को बढ़ावा देती है। उनके मुताबिक रेम-नींद ऐसे आकस्मिक संयोजनों को कम करती है और इस तरह अनावश्यक स्मृतियों को मिटा भी देती है। ज़ाहिर है ऐसा बेतरतीब तरीका बेतुके निरर्थक दृश्यों को गढ़ता है।

इन्होंने पाया कि बड़ों की तुलना में छोटे बच्चे लगभग दुगनी 'रेम-नींद' लेते हैं। यहां तक कि बच्चेदानी में भी उनमें 'रेम' दिखाई देती है। अगर वे सचमुच सपने देखते हैं, तो ये तथ्य फ्रायड के सिद्धांत के विपरीत जाते दिखते हैं। क्रिक और मिचीसन मानते हैं कि बच्चे अपने दिमाग को अनचाहे तंत्रकीय संयोजनों से आज़ाद रखने की गरज़ से सपने देखते हैं। वरना ये संयोजन स्मृतियां बनाने की दक्षता में हस्तक्षेप कर सकते हैं। इस परिकल्पना में चींटी खाने वाले एंटईटर में 'रेम-नींद' की गैरहाज़री को यह कहकर समझाया गया है कि उसके दिमाग में बाहरी सलदार हिस्सा यानी नियो-कोरटेक्स बहुत बड़ा होता है इसलिए इन तंत्रिका संयोजनों से उसे कुछ खास फर्क नहीं पड़ता।

फ्रायड प्रेमी सपनों को याद करना और उसके विश्लेषण को लाभदायक मानते हैं। जबकि क्रिक और मिचीसन के अनुसार "हम भूल जाने के लिए ही सपने देखते हैं"। सपनों को फिर से याद करने की कोशिश नुकसान पहुंचा सकती है। "सपनों को याद रखे रहने की चेष्टा को शायद बढ़ावा नहीं देना चाहिए, क्योंकि ऐसी कोशिश उन विचारों को भूलने नहीं देगी जिनको दिमाग भूलने की कोशिश कर रहा है।"

'द ड्रीमिंग ब्रेन'

पिछले कुछ वर्षों में सपनों को लेकर कई अनुमान और अटकलबाज़ियां चलती रही हैं। पर इस विषय में सबसे बेहतरीन और प्रभावी किताब रही है 'द ड्रीमिंग ब्रेन'। लेखक हैं मनोविज्ञान के प्रोफेसर

* डी. एन. ए. की सर्पिल संरचना खोजने के लिए नोबेल पुरस्कार प्राप्त वैज्ञानिक।

— जे. एलन होबसन। उनके विचार भी फ्रायड के विचारों के खिलाफ जाते हैं।

उपरोक्त दो सिद्धांतो से इत्तेफाक रखते हुए होबसन मानते हैं कि सपनों की कोई 'दबी–छुपी विषय वस्तु' नहीं होती। होबसन के लिए ये 'पारदर्शी' हैं। निरर्थक स्मृतियों को मिटाने या अनावश्यक तंत्रकीय संयोजनों को निरुत्साहित करने के बजाए, हमारा दिमाग सोते समय विद्युत ऊर्जा का इस्तेमाल केवल तंत्रिकाओं को बेतरतीब तरीके से उत्तेजित करने में करता है। ज़ाहिर तौर पर ऐसा करते समय उसकी कल्पनाएं हाल ही में घटी घटनाओं से प्रभावित होती हैं। मनोवैज्ञानिक उन्हें 'दिन के अवशेष' (Day residue) कहते हैं। इसके अलावा ये छवियां पुरानी यादों, सोने वाली जगह की स्थिति, शरीर की अवस्था, तीव्र आशाओं व डर आदि से भी प्रभावित होती हैं।

चूंकि सपने अचेतन इच्छाओं को छिपाते नहीं हैं इसलिए न तो सपनों के अन्दर झांका जा सकता है और न ही सपनों का मतलब खोजा जा सकता है। सपने सिर्फ वही हैं जो दिखते हैं। रेल या बस छूटने का सपना हमारी ज़िन्दगी से हुई किसी ऐसी ही घटना की ओर इंगित करता है। सपनों में अपने किसी दोस्त या रिश्तेदार से मिलना उस व्यक्ति के लिए हमारा प्रेम दर्शाता है। सपनों में हमारी किसी से झड़प इसलिए होती है क्योंकि हम उसे नापसंद करते हैं या डरते हैं। अगर आप अक्सर कल्पना करते हैं कि खुली हवा में उड़ना कितना रोमांचक और सुखकर होगा तो आप अपनी यह इच्छा सपने में पूरी होती पाएंगे। शायद पानी में तैरना, कूदना, स्केटिंग, फिसलन आदि जैसी स्मृतियां इसे और मज़बूती देती हैं।

फ्रायड के अनुसार सपने की सिगरेट शायद एक सिगरेट से ज़्यादा कुछ नहीं और हाबसन सपने की सिगरेट को हर हाल में सिगरेट ही मानते हैं। एक बार मुझे एक बहुत ही स्पष्ट सपना आया जिसमें मैंने अपने आप को एक अजीब से कमरे में बैठा पाया। मेरे पास ही ऐश ट्रे पर एक जलता सिगार रखा था। यह जानते हुए कि मैं सपना देख रहा हूं मैंने एक प्रयोग करने की सोची। मैं जानना चाहता था कि सपने की छवियों को बारीकी से देख पाने के साथ-साथ क्या मेरे सपनों में गंध भी शामिल है? उस समय मैं दीवार पर बना हुआ पेचीदा डिज़ाइन देख पा रहा था। सिगार को उठाकर मैं उसे नाक के करीब ले आया। नतीजतन जलते तंबाकू की इतनी तेज़ गंध आई कि मेरी नींद उचट गई। मेरे सपनों का सिगार केवल एक सिगार ही था।

हॉबसन एक जीवन्त सपने को याद करते हैं जिसमें बोस्टन के फाईन आर्टस के अजायबघर में घूमते हुए उन्होंने मोज़ार्ट (प्रसिद्ध संगीतज्ञ) को पियानो बजाते देखा और सुना।

उन्होंने ध्यान दिया की मोज़ार्ट कुछ मोटे हो गए हैं। फ्रायड को मानने वाला इसका मतलब कुछ यूं निकाल सकता है कि सपने का मोज़ार्ट उसके पिता की प्रतिमूर्ति था और उनका मोटा होना

हॉबसन की इस अचेतन इच्छा को दर्शाता है कि वह अपने पिता को मारकर अपनी मां को केवल अपने तक रखना चाहता है। हॉबसन के मुताबिक मोज़ार्ट द्वारा बजाया जा रहा संगीत काफी जाना पहचाना था। अक्सर गाड़ी चलाते समय वे मोज़ार्ट को सुनते थे और बोस्टन के इस अजायबघर में अक्सर उनका आना जाना होता था। और उनका अपना पेट बढ़ने लगा था। यानी सपना कोई छिपा हुआ मतलब लिए नहीं था। जैसा हॉबसन कहते हैं 'मोज़ार्ट, मोज़ार्ट है'।

हालांकि हम अपनी ज़िन्दगी का एक तिहाई हिस्सा अचेतन अवस्था में गुज़ार देते हैं, पर यह क्यों ज़रूरी है – अभी तक साफ नहीं है। यह तो हम जानते हैं

कि नींद शरीर को तरोताज़ा कर देती है। परन्तु इस धारणा को खारिज़ करना पड़ेगा कि नींद के दौरान हम अपनी तंत्रिकाओं को 'आराम' देते हैं, क्योंकि पाया गया है कि तंत्रिकाएं नींद में भी उतनी ही सक्रिय रहती हैं जितनी जागृत अवस्था में। उनका मानना है कि तंत्रिकाओं को आराम देने वाली परिकल्पना फिर से जीवित की जा सकती है अगर हम यह मान लें कि 'रेम-नींद' के दौरान थकी हुई तंत्रिकाएं कम उत्तेजित होती हैं।

चूंकि ज़्यादातर सपने मनोरंजक व सुखकर होते हैं, हाबसन यह भी अनुमान लगाते हैं कि हो सकता है कि विकास के दौरान सपने कुछ हद तक मनोरंजन के लिए विकसित हुए हों। अधिकतर सपने एक फंतासी कहानी को पढ़ने या ऐसा ही कोई नाटक या फिल्म देखने जैसे मज़ेदार होते हैं।

इन तीनों सिद्धांतों में सपनों की उल-जलूल प्रकृति की व्याख्या, तंत्रिकाओं की बेतरतीब उत्तेजना और अनाप–शनाप दृश्यों को जोड़कर दिमाग द्वारा एक संभव-सा दृश्य बना पाने के प्रयासों के आधार पर की गई है। यहां उन सपनों का ज़िक्र नहीं किया जा रहा है, जिनमें यह जानते हुए भी कि हम सो रहे हैं, हम अपनी मर्ज़ी के मुताबिक सपनों को नियंत्रित कर सकते हैं।

अब जबकि फ्रायड के स्वप्न सिद्धांत एक बुरे सपने की तरह हवा हो रहे हैं, आखिर 'स्वप्न सिद्धांत' की स्थिति अब है क्या? हालांकि इस बारे में बहुत सारी खोजबीन चल रही है, और एक दूसरे की खिलाफत करती हुई कई परिकल्पनाएं सुझाई जा रही हैं, पर हम कैसे और क्यों सपने देखते हैं अभी तक एक गहन रहस्य बना हुआ है। ताज्जुब है कि आज लगाए जा रहे ये सब अनुमान प्लेटो और अरस्तु के चिन्तन से बहुत फर्क नहीं रखते।

मार्टिन गार्डनर – गणित व तर्क से जुड़ी पहेलियां लिखने के लिए विश्वविख्यात। अमेरिका से प्रकाशित पत्रिका *'साइंटिफिक अमेरिकन'* में लगातार कई सालों तक गणित की पहेलियों को लेकर नियमित कॉलम लिखा। उन्होंने कई किताबें भी लिखी हैं। मार्टिन 'सोसायटी फॉर पेरानॉरमल' के सक्रिय सदस्य हैं।

1914 में जन्में मार्टिन गार्डनर ने दर्शन शास्त्र में पढ़ाई की। दूसरे विश्वयुद्ध के पहले कुछ सालों तक पत्रकार के रूप में काम किया। बाद में वे अमेरिका की जलसेना से भी जुड़े। 1957 के बाद से वे स्वतंत्र रूप से लिख रहे हैं।

* यह लेख अमरीका से प्रकाशित पत्रिका *'स्केप्टिकल इनक्वायरर'* से लिया गया है।

अनुवादः शशि सबलोक

चित्रः उमेश गौर

▣▣▣

मंगल ग्रह के वासी
और
सपनों की तहकीकात

● रिचर्ड पी. फाइनमेन

**क्या सपने की दिशा को बदला जा सकता है?
या फिर क्या सपने में डर भी लगता है?**

सालों पहले पिताजी ने मेरे सामने एक समस्या रखी – मान लो मंगल ग्रह के कुछ वासी पृथ्वी पर आते हैं; मंगलवासी यानी ऐसे लोग जो सोते नहीं हैं, फिर भी हमेशा सक्रिय रहते हैं। मान लो उन्हें इस खब्ती क्रिया का कुछ भी भान नहीं है जिसे हम नींद कहते हैं। ऐसे में वे तुमसे पूछते हैं – कैसा महसूस होता है तुम्हें जब तुम सो जाते हो? क्या होता है जब तुम सोते हो? क्या सोते वक्त विचार आने एकदम बंद हो जाते हैं कि इधर लेटे और उधर विचारों का दरवाज़ा खट से बंद हो गया या उनके तुम तक पहुंचने की गति धीरे.....और...... ध ी . . . . . र े . . . . औ.........र............धी...............रे... होती जाती है? दिमाग वास्तव में अपने आपको कैसे ऑफ करता है?

अगले चार हफ्तों तक हर दोपहर मैंने इसी मुद्दे पर काम किया। मैं अपने कमरे के सभी परदे गिरा देता, बत्तियां बंद कर देता और नींद के आगोश में जा बैठता। और देखता कि दरअसल क्या हो होता है, जब मैं सो रहा होता हूं। रात को फिर यही किस्सा दोहराया जाता। सो इससे मुझे एक दिन में अवलोकन करने के दो मौके मिलते!

:यता

शैक्षिक संदर्भ

वार्षिक सदस्यता

एवं

उपहार

.....

.....

.....

.....

.....

.........रुपए

मुफ्त। बैंक ड्राफ्ट या

फ नाम से भेजें। चेक

हस्ताक्षर

कर रहा था कि दो रस्सियां मेरे बिस्तर के कोनों से बंधी हैं। ये रस्सियां फिर एक घिरनी पर से होती हुई एक घूमते सिलिण्डर पर लिपटी हैं; जिससे धीरे-धीरे मेरा बिस्तर ऊपर उठ रहा है। मैं उस तरह की कोई कल्पना कर रहा हूं

रहता है। पर उन विचारों के बीच का तार्किक संबंध धीरे-धीरे कम होता जाता है। ये विचार तार्किक रूप से जुड़े नहीं हैं — इस तरफ आपका ध्यान तब तक नहीं जाता जब तक कि आप खुद से यह सवाल न करें कि मुझे ऐसा सोचने
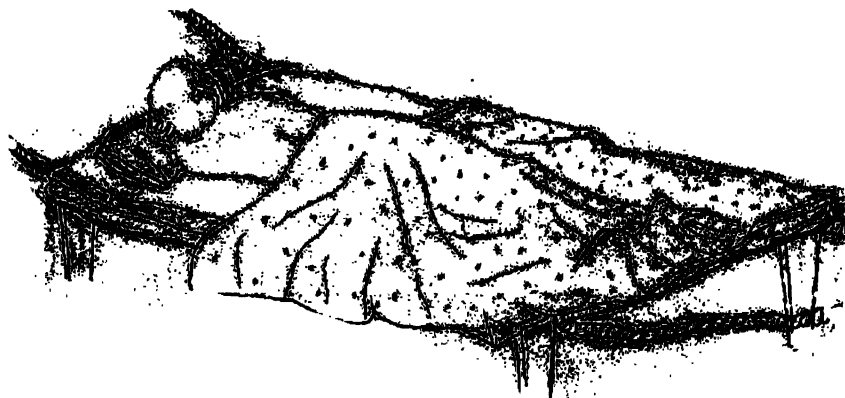
सबसे पहले मैंने बहुत-सी गौण बातों को नोट किया, जिनका सोने की प्रक्रिया से बहुत लेना-देना नहीं था। मसलन मैंने गौर किया कि मैं अपने आप से मन ही मन बातचीत करते हुए बहुत–सा सोचने का काम करता था। उस दौरान मैं चीज़ों की दृश्यमान कल्पना भी कर पाता था।

और जब मैं थक रहा होता तो मैंने पाया की मैं दो चीज़ों के बारे में एक साथ सोच पा रहा हूं। मैंने इस पर गौर तब किया जब मैं मन-ही-मन किसी चीज़ पर विचार कर रहा था और साथ ही उस दौरान यूं ही कल्पना भी कर रहा था कि दो रस्सियां मेरे बिस्तर के कोनों से बंधी हैं। ये रस्सियां फिर एक घिरनी पर से होती हुई एक घूमते सिलिण्डर पर लिपटी हैं; जिससे धीरे-धीरे मेरा बिस्तर ऊपर उठ रहा है। मैं उस तरह की कोई कल्पना कर रहा हूं इस बात को लेकर मैं तब तक पूरी तरह से अनभिज्ञ था जब तक कि मुझे इस विचार ने चिन्ता में नहीं डाल दिया कि अगर एक रस्सी पर दूसरी रस्सी चढ़ गई तो वो इतनी आसानी से नहीं घूम सकेगी। पर साथ ही मैं अपने आप से यह भी कहता हूं कि रस्सियों का तनाव ऐसा नहीं होने देगा। इस ख्याल ने मेरे मन में चल रहे पहले विचार को अवरुद्ध कर दिया और यह अहसास दिलाया कि मैं दो चीज़ों पर एक साथ विचार कर रहा था।

मैंने यह भी नोटिस किया कि नींद से पहले विचारों का आना-जाना बना रहता है। पर उन विचारों के बीच का तार्किक संबंध धीरे-धीरे कम होता जाता है। ये विचार तार्किक रूप से जुड़े नहीं हैं – इस तरफ आपका ध्यान तब तक नहीं जाता जब तक कि आप खुद से यह सवाल न करें कि मुझे ऐसा सोचने

पर किसने उकसाया। और फिर आप उल्टी दिशा में फिर से सोचने लगते हैं, अक्सर वजह याद ही नहीं आती।

विचारों के बीच तार्किक संबंध होने का भ्रम आपको हर पल बना रहता है पर दरअसल विचार एक दूसरे से दूर और असंबद्ध होते चले जाते हैं और आखिरकार आप नींद के आगोश में डूब जाते हैं।

इस तरह चार हफ्तों की नींद के बाद मैं अपने अवलोकनों की व्याख्या कर पाया। ये सब अवलोकन मैंने खुद को सोता देखते हुए किए। अपने लेख में मैंने इस बात का भी ज़िक्र किया कि मैं नहीं जानता कि 'सोने' का वह अनुभव कैसा होगा जब मैं खुद को देख नहीं रहा हूं।

अपना लेख लिख लेने के बाद भी इस मामले में मेरी उत्सुकता बनी रही और मैं सोते वक्त इस तरह के अवलोकन करता रहा। एक रात सपने में मैंने खुद को खुद का अवलोकन करते पाया!

डर का अनुभव

सपने के पहले हिस्से में, मैं एक रेल के डिब्बे के ऊपर चढ़ा हुआ था और हमारी रेल एक सुरंग की तरफ बढ़ रही थी। मैं डर गया, जल्दी से अपने आप को नीचे खींचा और हमने वह सुरंग पार कर ली, उफ......। मैं अपने आप से कहता हूं, "तो तुम सपने में भी डर का अनुभव कर सकते हो और सुरंग में से गुज़रती रेल की आवाज़ का फर्क भी सुन सकते हो।"

हां, एक बात और। कुछ लोग कहते हैं कि वे सपने में सिर्फ काला और सफेद रंग ही देख सकते हैं पर मैं सपनों में रंग भी देख सकता था।

अब तक मैं एक डिब्बे के अन्दर आ चुका था। मुझे रेल कुछ लड़खड़ाती हुई महसूस हुई। "तो सपनों में गति बदलने से पैदा होने वाला अहसास भी महसूस किया जा सकता है।" मैं खुद से कहता हूं। मैं कुछ कठिनाई से डिब्बे के अंत तक पहुंचता हूं। वहां मुझे एक बड़ी-सी खिड़की दिखाई देती है. किसी दुकान के शो-केस जैसी। झांकता हूं तो पाता हूं कि वहां तो पुतलों की जगह तीन जीती-जागती सुन्दर लड़कियां मौजूद हैं।

दिशा का नियंत्रण भी. . .

मैं अगले डिब्बे की तरफ चलना जारी रखता हूं, फिर खुद से ही कहता हूं, "थोड़ा-सा उत्तेजना का मज़ा भी चख लेना चाहिए।", और वापस पहले वाले डिब्बे में जाने की बात सोचता हूं। मैंने पाया कि मैं मुड़कर फिर से रेल के अंदर से गुज़र सकता हूं – यानी मैं अपने सपनों की दिशा को नियंत्रित कर सकता हूं। मैं उसी खिड़की से डिब्बे में प्रवेश करता हूं और पाता हूं कि वहां तीन बुजुर्ग वायलिन बजा रहे हैं। पर वे अचानक ही लड़कियों में बदल जाते हैं – तो इसका अर्थ हुआ कि मैं सपनों की दिशा में भी बदलाव ला

सकता हूं..... पर पूरी तरह से नहीं.......।

खैर मैं यह कहता हुआ उत्तेजित होने लगता हूं, "वाह! यह तरीका काम कर रहा है।" और फिर मैं जाग जाता हूं।

सपनों के दौरान मैंने कुछ अन्य बातों का भी अवलोकन किया। "क्या मैं सचमुच रंगीन सपने देख रहा हूं?", अपने आप से हमेशा यह पूछने के अलावा मैं सोचने लगा, "किसी चीज़ को हम कितनी बारीकी से देख सकते हैं?"

अगली बार मुझे घास में लेटी एक लड़की का सपना आया। उसके बालों का रंग लाल था। मैंने कोशिश की कि क्या मैं उसके हर-एक बाल को देख सकता हूं। बालों पर जहां से सूरज की रोशनी परावर्तित होती है उतने छोटे-से हिस्से में डिफरेक्शन के कारण रंग दिखाई देते हैं। मुझे वह भी दिखाई दे रहा था! मैं उसके हर बाल को एकदम सफाई से अलग-अलग देख सकता था।

अगली बार मैंने एक सपना देखा जिसमें दरवाज़े के फ्रेम में एक पिन घुसी हुई थी। मैंने फ्रेम पर हाथ फेरा और पिन को महसूस किया। लगता है दिमाग के 'देखने से जुड़े हिस्से' और 'महसूस करने वाले हिस्से' में संबंध है। फिर मैं खुद से कहता हूं, "क्या ऐसा हो सकता है कि इनमें कोई संबंध न हो।" मैं दोबारा फ्रेम की तरफ देखता हूं, अब वहां पिन नहीं है। मैं फ्रेम पर अंगुलियां फेरता हूं और अब भी पिन को महसूस करता हूं।

मेरे सपनों के एक और किस्से पर गौर फरमाइए। एक बार सपने में मैंने सुना 'खट-खट, खट-खट', उस वक्त सपने में कुछ ऐसा घट रहा था जिसने
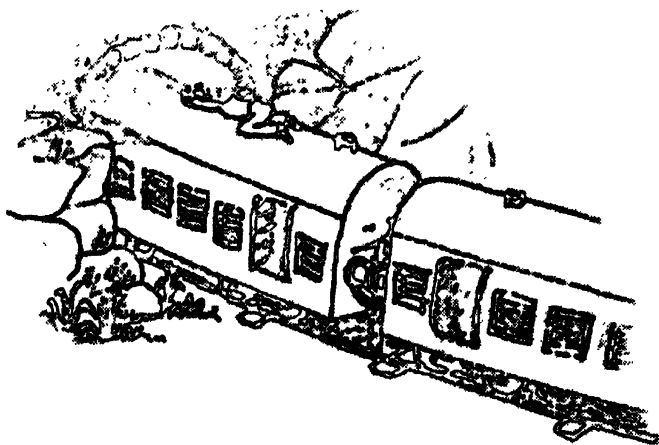
इस खटखटाहट को अपने दायरे में शामिल कर लिया, पर पूरी तरह से नहीं — यह आवाज़ एक तरह से बाहरी ही रही। मैं सोचता हूं, "मुझे पूरा यकीन है की यह आवाज़ सपने के दायरे से बाहर कहीं से आ रही है। इस आवाज़ को दायरे में लाने के लिए ही मैंने सपने के इस हिस्से को ईजाद किया। अब मुझे उठना ही पड़ेगा, आखिर जानना तो है ही कि आखिर माजरा क्या है।"

आवाज़ अब भी बदस्तूर जारी है। मैं जागता हूं और.. मौत का-सा सन्नाटा। बाहर कोई आवाज़ न थी। तो यह आवाज़ बाहर से भी संबद्ध नहीं थी।

कुछ लोगों ने मुझसे कहा कि वे बाहरी आवाज़ों को सपनों में समाहित कर लेते हैं। पर मेरे सपने में ऐसा नहीं हुआ।

सपनों का अवलोकन करते समय, नींद से उठने की प्रक्रिया काफी भयंकर थी। जब आप उठने की शुरुआत करते हैं तो एक ऐसी भी घड़ी आती है जब आप पूरी तरह से जकड़े हुए महसूस करते हैं, लगता है आपको बांध दिया गया हो या आप ढेर सारे लिहाफों के नीचे दबे हों। इसकी व्याख्या करना मुश्किल है। पर एक पल ऐसा आता है जब आप महूसस करते हैं कि आप इससे बाहर नहीं निकल पाएंगे। आपको विश्वास नहीं होता की आप जाग सकते हैं। तो जागने के बाद मुझे खुद से कहना पड़ता था कि — यह सब हास्यास्पद है। जहां तक मैं जानता था ऐसी कोई बीमारी नहीं है जिसमें प्राकृतिक तौर पर सोने के बाद व्यक्ति जाग न सके। आप कभी भी जाग सकते हैं। इस तरह कई-कई बार खुद-से बातें करने के बाद मेरा डर लगातार कम होता गया; बल्कि जागने की प्रक्रिया मुझे अब ज़्यादा रोमांचक लगने लगी, कुछ-कुछ गोल-गोल घूमने वाले बड़े झूले की तरह। थोड़ी देर बाद जब आपको डर लगना बंद हो जाता है तो आप धीरे-धीरे उसका मज़ा लेने लगते हैं।

अब आप शायद यह भी जानना चाहेंगे कि सपनों में ताका-झांकी की मेरी इस प्रक्रिया में रोक कैसे लगी। एक रात मैं हर बार की तरह सपने देख रहा था और ज़ाहिर है उसका अवलोकन भी जारी था। मैं अपने सामने की दीवार पर एक झुमका लटका देखता हूं और पच्चीसवीं बार खुद से कहता हूं, "हां, मैं सपनों में रंग देख रहा हूं।"

फिर मुझे अहसास होता है कि अब तक मैं अपने सिर के पिछले हिस्से को एक पीतल की छड़ से टिका कर सो रहा था। मैं अपने हाथ से उस हिस्से को छूता हूं और पाता हूं कि वो तो बहुत ही नर्म है। मैं सोचता हूं, "तो इसलिए मैं सपनों में ये सारे अवलोकन कर पाया, इस पीतल की छड़ ने मेरे दिमाग के इस सलदार हिस्से (नियो-कोरटेक्स) को डिस्टर्ब कर दिया था। अब मुझे सिर्फ इतना करना है कि सोते वक्त अपने सिर के नीचे एक पीतल की

छड़ रखनी है और बस जब चाहूं मैं अपने सपनों का अवलोकन कर सकता हूं। तो मैं अब इस सपने का अवलोकन बंद कर गहरी नींद सो जाता हूं।"

बाद में जब मैं सो कर उठा तो पाया कि न तो वहां कोई छड़ थी न ही सिर का पिछला हिस्सा नर्म था। पर अब तक मैं अवलोकन करते-करते थक-सा गया था और मेरे दिमाग ने ऐसा एक झूठा कारण भी ढूंढ लिया था जिससे मुझे आगे अब और ऐसा न करना पड़े।

इन अवलोकनों के परिणामस्वरूप मैंने एक छोटा-सा सिद्धांत बनाया। मेरा सपनों में झांकने का एक कारण तो मेरी जिज्ञासा थी कि सपनों में आप कैसे एक आकृति, एक आदमी को देख सकते हैं जबकि आपकी आंखें बंद हैं और बाहर से कुछ भी अंदर नहीं आ रहा है। आप कह सकते हैं कि यह तंत्रिकाओं द्वारा बेतरतीब, अनियंत्रित उत्तेजना के कारण हो सकता है। पर सोते समय तंत्रिकाओं की इस बेतरतीब उत्तेजना से कोई नियमित पैर्टन कैसे बन सकता है बिल्कुल वैसा मानो वह व्यक्ति जागृत अवस्था में उन चीज़ों को देख रहा हो। तो फिर मैं सोते हुए रंगीन सपना कैसे देख पाया और वो भी इतनी बारीकी से?

मैंने सोचा कि वहां एक 'मीमांसा विभाग' (यानी चीज़ों का अर्थ निकालने वाला विभाग) होना चाहिए। जब आप किसी चीज़ को देखते हैं मसलन एक आदमी, एक लैम्प या एक दीवार, तो आप केवल रंगों के धब्बे ही तो नहीं देखते। कोई चीज़ है जो आप को बताती है कि वो क्या है। उसकी मीमांसा ज़रूरी है। सपनों के दौरान यह मीमांसा विभाग बदस्तूर काम करता रहता है, पर गड्ड-मड्ड तरीके से। वह आपको कहता है कि आप एक आदमी के बाल अत्यन्त बारीकी से देख रहे हैं, जबकि सचमुच में ऐसा कुछ नहीं हो रहा। यह विभाग दिमाग में पहुंचने वाली बेतरतीब फालतू चीज़ों की व्याख्या कर उन्हें एक साफ-सुथरी छवि के रूप में प्रस्तुत करता है।

सपनों के संबंध में एक और बात। मेरा एक दोस्त है, उसकी बीवी मनोविश्लेषकों के परिवार से आई है। एक शाम सपनों के बारे में विस्तार से बातें करते समय उसने कहा कि सपने अर्थपूर्ण होते हैं। सपनों में कुछ संकेत होते हैं, मनोविश्लेषात्मक तरीके से उनका अर्थ निकाला जा सकता है। इस तरह की ज़्यादातर बातों पर मैं यकीन नहीं करता पर उस रात मुझे एक मज़ेदार सपना आया। हम तीन गेंदों के साथ मेज़ पर एक खेल खेल रहे हैं – एक सफेद, एक हरी और एक सलेटी। यह खेल कुछ इस तरह का है जिसमें गेंदों को मेज़ पर बने छेदों में डाला जाता है। सफेद और हरी तो आसानी से छेदों में जा रही थीं पर सलेटी को मैं न डाल पाया।

जागने पर सपने का मतलब निकालना मुश्किल न था। खेल से इतना संकेत तो मिला कि सब गेंद लड़कियां

हैं। सफेद गेंद को पहचानना मुश्किल न था। मैं उन दिनों एक लड़की के साथ अक्सर घूमता था। वह एक दुकान में केशियर का काम करती थी। उसकी ड्रेस का रंग सफेद था। हरे रंग को पहचानना भी कोई मुश्किल काम न था। दो दिन पहले जिस लड़की के साथ मैं पिक्चर देखने गया था उसने हरे कपड़े पहन रखे थे। पर स्लेटी का क्या माजरा है? यह कोई तो होना ही चाहिए.... पर कौन..... । मामला कुछ वैसा ही था कि आप कुछ याद करने की कोशिश में लगे हैं; लगता है वो आपके दिलो–दिमाग में है पर जुबान पर नहीं आता। उस दिन मुझे याद करने में आधा दिन लग गया – कि दो-तीन महीने पहले मैंने एक लड़की को अलविदा कहा था। उसे मैं बहुत चाहता था और अब वह इटली गई है। मैं यह तो नहीं जानता कि उस दिन उसने सलेटी रंग के कपड़े पहने थे; पर इतना तो बिल्कुल साफ है कि जैसे ही मैंने उसके बारे में सोचा मुझे लगा कि स्लेटी गेंद का संबंध उसी से होगा।

मैं अपने दोस्त के पास गया और कहा कि तुम्हारा कहना ज़रूर सच होगा, सपनों में विश्लेषण करने जैसा कुछ तो होता है। पर जब उसने मेरा यह सपना सुना तो कहा, "यह तो बहुत ही ज़्यादा सटीक और संक्षिप्त था। अमूमन आपको इससे ज़्यादा विश्लेषण करने की ज़रूरत होती है।"

रिचर्ड पी. फाइनमेन (१९१८–१९८८) – प्रसिद्ध भौतिकशास्त्री, नोबेल पुरस्कार विजेता। यह अंश उनकी आत्मकथा ***Surely you are joking Mr. Feynman*** से लिया गया है।
अनुवाद: शशि सबलोक, चित्र: उमेश गौर

ज़रा सिर तो खुजलाइए

कई घरों में सीढ़ियों पर लगा बल्ब दो स्विच से जुड़ा होता है – एक सीढ़ी के ऊपर और दूसरा नीचे। दोनों में से किसी भी स्विच से सीढ़ी पर लगा बल्ब जलाया या बुझाया जा सकता है।
ये दोनों स्विच साधारण किस्म के होते हैं। कमाल केवल परिपथ का है। सोचकर ऐसा परिपथ बनाकर भेजिए जिससे ऐसा कर पाना संभव हो।
अगर यह सवाल आसान लगे तो आप इस बात पर भी विचार कर सकते हैं कि क्या तीन स्विच से भी ऐसा कर पाना संभव है? और यदि हां, तो किस तरह ?
अपने जवाब हमें लिख भेजिए, ***संदर्भ, द्वारा एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद, 461 001; इन्हें हम अगले अंक में प्रकाशित करेंगे।***
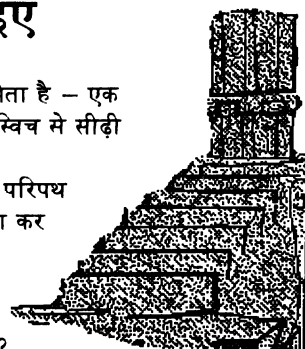
आलू
वनस्पति विज्ञान की नज़र में

किशोर पवार

आलू और प्रयोगशाला में? आइए देखें कैसे।

पाकशाला में होने वाले आलू के प्रयोगों से तो हम भलीभांति परिचित हैं, परन्तु इसके अलावा भी आलू के कई उपयोग हैं जिनकी ओर आपका ध्यान कम ही जाता होगा। हम जैसे जीव विज्ञानियों का काम तो आलू के बिना चल ही नहीं सकता।

सबसे पहले, आइये देखें कि आलू आखिर है क्या? वनस्पति विज्ञानियों का कहना है कि आलू जड़ नहीं बल्कि एक 'परिवर्तित तना' है। इसके पक्ष में वे कई प्रमाण देते हैं। मसलन आलू पर गठानों (पर्व संधियों) का पाया जाना और इस पर 'आंख' होना आदि। आलू की सतह पर यहां-वहां दिखाई देने वाले छोटे-छोटे गड्ढे जिन्हें हम बोलचाल में 'आंख' कहते हैं वास्तव में तने पर पायी जाने वाली कलियां हैं। एक आंख में प्रायः ऐसी तीन कलियां होती हैं। कली की उपस्थिति गठान (पर्वसंधी) की मौजूदगी दर्शाती है और दो कलियों के बीच की दूरी 'पर्व'। ठीक वैसे ही जैसे गन्ना जिसमें गठान और गठानों के बीच की जगह स्पष्ट दिखाई देती है और प्रायः एक गठान पर एक-एक 'आंख' उस पर भी होती है। फर्क इतना भर है कि गन्ना ज़मीन के ऊपर रहता है और लम्बा तने जैसा दिखाई देता है परन्तु आलू के तने का आकार बदलकर लगभग गोलाकार या अंडाकार हो जाता है, बाकी सब रचनाएं तो दोनों में एक समान ही हैं।

आलू के पौधे में मुख्य तना ज़मीन के बाहर रहता है। मुख्य तने के आधार से कई शाखाएं निकलती हैं जो मिट्टी के अन्दर सतह के समान्तर आगे बढ़ती हैं। कुछ ही समय बाद इन शाखाओं की

आलू और उसके बाहरी हिस्से की काट : स्टार्च एक कार्बोहाइड्रेट है, जो कणों के रूप में मिलता है। आलू की काट में कोशिका के भीतर स्टार्च के कण दिख रहे हैं।

आगे की वृद्धि रुक जाती है परन्तु पत्तियों में बन रहे भोजन का नीचे की ओर प्रवाह बना रहता है। इस कारण इनका आगे का भाग भोजन संग्रह के कारण फूलता चला जाता है और आलू के रूप में हमारे सामने आता है। इस तरह आलू एक फूला हुआ तना है जो ज़मीन के ऊपर रहने के बजाय अन्दर ही रहता है। इसे कन्द (ट्यूबर) कहते हैं।

सोती-जागती आलू की आंखें

आलू का फैलाव यानी नई फसल लेना भी कम रोचक नहीं है। अन्य सब्ज़ियों और फलों की तरह आलू के बीज नहीं बोये जाते। आलू की खेती में आलू की 'आंखों' का बड़ा महत्व है। आलू की इन आंखों को ही बीजों की तरह इस्तेमाल किया जाता है। आंखदार आलू को जब हम बोते हैं तो ये सोयी हुई 'आंख' जाग जाती है और नई-नई शाखाओं को जन्म देती है। परन्तु जब आलू को बीज नहीं बल्कि सब्ज़ी के रूप में प्रयोग करना हो तो इन्हें शीत-गृहों में रखा जाता है जहां ये लम्बे समय तक सुषुप्त अवस्था में पड़े रहते हैं। कभी-कभी इन्हें सुलाए रखने के लिए नेफ्थलीक ऐसिटिक अम्ल का घोल छिड़का जाता है ताकि आलू के कंदों का व्यापारिक महत्व बना रहे।

और जब आलू का प्रयोग बीज की तरह करना होता है तब शीतगृहों से हटाकर 2 प्रतिशत अमोनियम थाया-सायनिक अम्ल या जिब्बरेलिन से इनका उपचार करते हैं। आलू को इथीलीन क्लोरोहायड्रिन की वाष्प में 24 घंटे रखने से भी इनकी नींद उड़ जाती है और ये अंकुरित हो उठते हैं।

प्रयागशाला में आलू

जीव विज्ञान के अध्ययन में आलू का अच्छा-खासा योगदान है। चाहे कोशिका रचना देखने की बात हो या कोशिका विभेदन को समझने की, किसी न किसी प्रयोग में आलू की ज़रूरत पड़ ही जाती है। विज्ञान की सबसे पुरानी शाखा

आकारिकी (मोर्फोलॉजी) से बीसवीं सदी की जैव तकनीकी (बायोटेक्नोलॉजी) जैसी नवीनतम शाखा में भी आलू काम आता है।

तनों के रूपान्तरों की चर्चा हो तो आलू भूमिगत तने का एक सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। कोशिकाओं में भोजन कैसे संग्रहित होता है यह दिखाना हो तो आलू का ज़िक्र आएगा ही। आलू के पतले सेक्शन काट कर आयोडीन के तनु घोल में रखने पर वे नीले-काले रंग के हो जाते हैं। यह आलू में स्टार्च की उपस्थिति दर्शाता है। इसी पतली काट को माइक्रोस्कोप से देखें तो कोशिका रचना के अलावा कोशिकायों में भरे स्टार्च के कण बेहद सुन्दर दिखाई देते हैं।

आलू की कोशिकाओं में स्टार्च

जीव विज्ञान में तनों, पत्तों आदि की एकदम पतली व हर तरफ से बराबर

आलू से ऑस्मोस्कोप

ऑस्मोस्कोप बनाने के लिए एक बड़ा-सा आलू लेकर उसे चाकू की मदद से दो लगभग बराबर हिस्सों में बांट देते हैं। इनमें से एक टुकड़े का छिलका निकालकर उसे घनाकारनुमा आकार दे देते हैं। फिर चाकू को घनाकार टुकड़े की किसी एक सतह पर रखकर गोल-गोल घुमाने से उसमें गहरा गड्ढा बना दिया जाता है।

आलू के इस टुकड़े को पानी से भरी एक कटोरी या गहरी-सी तश्तरी में रखकर गड्ढे के अंदर नमक का अत्यंत सांद्र घोल भर देते हैं।

घोल की ऊपरी सतह को दर्शाने के लिए एक आलपिन लगा दी जाती है। दो-तीन घंटे बाद देखिए कि क्या घोल के तल में कोई अंतर आता है? आलू के अंदर रखे गए नमक के सांद्र घोल के तल में आया यह परिवर्तन जीवित वस्तुओं में पाई जाने वाली अर्धपारगम्य (semi permeable) झिल्लियों के व्यवहार के बारे में हमें जानकारी देता है।

प्रारंभिक स्थिति

दो घंटे बाद की स्थिति

आलू और उसके बाहरी हिस्से की काट : स्टार्च एक कार्बोहाइड्रेट है, जो कणों के रूप में मिलता है। आलू की काट में कोशिका के भीतर स्टार्च के कण दिख रहे हैं।

आगे की वृद्धि रुक जाती है परन्तु पत्तियों में बन रहे भोजन का नीचे की ओर प्रवाह बना रहता है। इस कारण इनका आगे का भाग भोजन संग्रह के कारण फूलता चला जाता है और आलू के रूप में हमारे सामने आता है। इस तरह आलू एक फूला हुआ तना है जो ज़मीन के ऊपर रहने के बजाय अन्दर ही रहता है। इसे कन्द (ट्यूबर) कहते हैं।

सोती-जागती आलू की आंखें

आलू का फैलाव यानी नई फसल लेना भी कम रोचक नहीं है। अन्य सब्ज़ियों और फलों की तरह आलू के बीज नहीं बोये जाते। आलू की खेती में आलू की 'आंखों' का बड़ा महत्व है। आलू की इन आंखों को ही बीजों की तरह इस्तेमाल किया जाता है। आंखदार आलू को जब हम बोते हैं तो ये सोयी हुई 'आंख' जाग जाती है और नई-नई शाखाओं को जन्म देती है। परन्तु जब आलू को बीज नहीं बल्कि सब्ज़ी के रूप में प्रयोग करना हो तो इन्हें शीत-गृहों में रखा जाता है जहां ये लम्बे समय तक सुषुप्त अवस्था में पड़े रहते हैं। कभी-कभी इन्हें सुलाए रखने के लिए नेफ्थलीक ऐसिटिक अम्ल का घोल छिड़का जाता है ताकि आलू के कंदों का व्यापारिक महत्व बना रहे।

और जब आलू का प्रयोग बीज की तरह करना होता है तब शीतगृहों से हटाकर 2 प्रतिशत अमोनियम थाया-सायनिक अम्ल या जिब्बरेलिन से इनका उपचार करते हैं। आलू को इथीलीन क्लोरोहायड्रिन की वाष्प में 24 घंटे रखने से भी इनकी नींद उड़ जाती है और ये अंकुरित हो उठते हैं।

प्रयागशाला में आलू

जीव विज्ञान के अध्ययन में आलू का अच्छा-खासा योगदान है। चाहे कोशिका रचना देखने की बात हो या कोशिका विभेदन को समझने की, किसी न किसी प्रयोग में आलू की ज़रूरत पड़ ही जाती है। विज्ञान की सबसे पुरानी शाखा

आकारिकी (मोर्फोलॉजी) से बीसवीं सदी की जैव तकनीकी (बायोटेक्नोलॉजी) जैसी नवीनतम शाखा में भी आलू काम आता है।

तनों के रूपान्तरों की चर्चा हो तो आलू भूमिगत तने का एक सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। कोशिकाओं में भोजन कैसे संग्रहित होता है यह दिखाना हो तो आलू का ज़िक्र आएगा ही। आलू के पतले सेक्शन काट कर आयोडीन के तनु घोल में रखने पर वे नीले-काले रंग के हो जाते हैं। यह आलू में स्टार्च की उपस्थिति दर्शाता है। इसी पतली काट को माइक्रोस्कोप से देखें तो कोशिका रचना के अलावा कोशिकायों में भरे स्टार्च के कण बेहद सुन्दर दिखाई देते हैं।

आलू की कोशिकाओं में स्टार्च

जीव विज्ञान में तनों, पत्तों आदि की एकदम पतली व हर तरफ से बराबर

आलू से ऑस्मोस्कोप

ऑस्मोस्कोप बनाने के लिए एक बड़ा-सा आलू लेकर उसे चाकू की मदद से दो लगभग बराबर हिस्सों में बांट देते हैं। इनमें से एक टुकड़े का छिलका निकालकर उसे घनाकारनुमा आकार दे देते हैं। फिर चाकू को घनाकार टुकड़े की किसी एक सतह पर रखकर गोल-गोल घुमाने से उसमें गहरा गड्ढा बना दिया जाता है।

आलू के इस टुकड़े को पानी से भरी एक कटोरी या गहरी-सी तश्तरी में रखकर गड्ढे के अंदर नमक का अत्यंत सांद्र घोल भर देते हैं।

घोल की ऊपरी सतह को दर्शाने के लिए एक आलपिन लगा दी जाती है। दो-तीन घंटे बाद देखिए कि क्या घोल के तल में कोई अंतर आता है? आलू के अंदर रखे गए नमक के सांद्र घोल के तल में आया यह परिवर्तन जीवित वस्तुओं में पाई जाने वाली अर्धपारगम्य (semi permeable) झिल्लियों के व्यवहार के बारे में हमें जानकारी देता है।

मोटाई की आड़ी व खड़ी काट तैयार करने को अपने आप में एक कला माना जाता है। खास तौर पर नर्म पौधों के पतले सेक्शन काटना काफी मुश्किल होता है। ऐसे में आलू का 'पिथ' के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके लिए काटे जाने वाले पौधे को आलू के छोटे टुकड़े में पतला चीरा लगाकर बीच में रख देते हैं। और फिर आलू के पतले सेक्शन काटते चले जाते हैं। इस तरह आलू के साथ अन्दर रखा नर्म पौधा भी तरतीब से कटता रहता है; और आलू स्वयं कटकर दूसरे पौधे की आंतरिक रचना दिखाने में सहायक होता है।

जीवों के अन्दर होने वाली विभिन्न जैविक क्रियाओं के प्रदर्शन और उन्हें समझने में भी आलू बहुत उपयोगी साबित होता है। पौधों में पानी के आवागमन को समझने और उसका प्रदर्शन करने के लिए आलू से 'ऑस्मोस्कोप' बनाते हैं। यह सरल प्रयोग हायर सेकेंडरी से लेकर स्नातक स्तर की कक्षाओं तक में किया जाता है।

इससे आगे बढ़ें तो जैव रसायन और माइक्रोबायलॉजी की प्रयोगशाला भी आलू के बिना सूनी है। पौधे में श्वसन क्रिया का प्रदर्शन करना हो, आलू हाज़िर है। इस हेतु आलू के छोटे-छोटे टुकड़े कर उन्हें फिनोफ्थेलीन के हल्के रंगीन घोल से भरी टेस्ट ट्यूब में रख दीजिए। थोड़ी देर बाद देखिए क्या होता है? फिनोफ्थेलीन का रंग उड़ा तो समझिये कि आलू श्वसन कर रहा है। श्वसन करने पर आलू कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ेगा जो पानी में घुलकर कार्बनिक अम्ल बनाएगी। यह अम्ल फिनोफ्थेलीन के रंगीन घोल को रंगहीन बना देगा।

यही प्रयोग मिथिलीन ब्लू के साथ भी किया जा सकता है। एक परखनली में मिथिलीन ब्लू का हल्का घोल भरकर उसमें आलू के टुकड़े डाल दिए जाते हैं। इस प्रयोग में ज़रूरी है कि परखनली में घोल को ऊपर तक भरकर उसे कॉर्क से हवाचुस्त कर दिया जाए। यहां भी आलू के श्वसन करने की वजह से मिथिलीन ब्लू का रंग उड़ जाता है। दरअसल ऑक्सीकृत अवस्था में मिथिलीन ब्लू का रंग नीला होता है और रिडयूस्ड स्वरूप में रंगहीन। यही कारण है कि इस प्रयोग में घोल को परखनली में ऊपर तक भरकर परखनली को हवाचुस्त बना देते हैं ताकि मिथिलीन ब्लू हवा की ऑक्सीजन के संपर्क में न आ सके।

*   *

आलू के साथ कई छोटे-छोटे मज़ेदार प्रयोग किए जाते हैं जो जीवों में मौजूद विभिन्न एंज़ाइम की उपस्थिति दर्शाते हैं।

आंख वाले भाग से आलू के पतले टुकड़े काटकर यदि उन्हें एक प्रतिशत टी.टी.सी. (ट्राय क्लोरो टेट्रा ज़ोलियम क्लोराइड) के घोल में रख दिया जाता है तो कुछ समय बाद वे लाल-गुलाबी होने लगते हैं जो श्वसन क्रिया में काम आने वाले डीहायड्रोजीनेज़ एंज़ाइम की उपस्थिति दर्शाता है। आलू की नई फसल लगाने से पहले अक्सर इस प्रयोग को यह पता लगाने के लिए किया जाता है
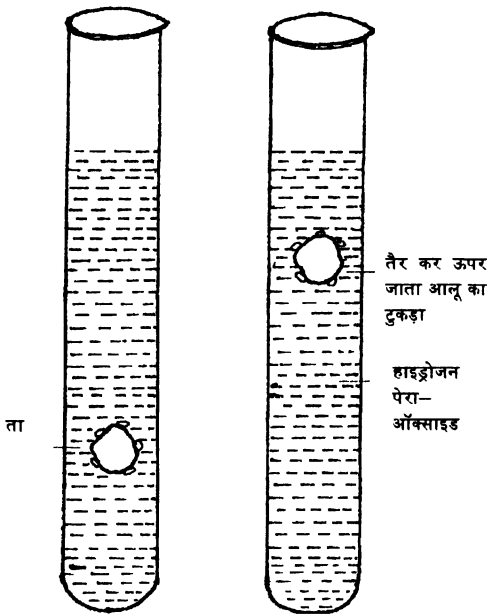
केटेलेज़ एंज़ाइम की क्रिया का प्रदर्शन

कि इन आलू की आंखों में से नए पौधे पैदा होंगे क्या? अगर आंखें श्वसन कर रही हैं तो इसका अर्थ है कि वे ज़िंदा हैं और नए पौधे पैदा कर सकती हैं।

इसी तरह यदि एक टेस्ट ट्यूब में हायड्रोजन पेरा-ऑक्साइड का तनु घोल भरकर आलू के छोटे-छोटे, पतले टुकड़ों को ऊपर से डाला जाए तो ये टुकड़े नीचे जाकर फिर तैरते हुए ऊपर आ जाते हैं। आलू में केटेलेज़ एंज़ाइम की उपस्थिति के कारण ऐसा होता है। केटेलेज़ हायड्रोजन पेरा-ऑक्साइड को पानी और ऑक्सीजन में तोड़ देता है। ऑक्सीजन के बुलबुले आलू की सतह पर चिपकने के कारण ही आलू के ये टुकड़े सतह पर आकर तैरने लगते हैं। इस प्रयोग से आलू में केटेलेज़ एंज़ाइम की उपस्थिति दर्शाई जा सकती है।

शुरुआती मायक्रोबायोलॉजी में भी आलू काम आता है। सूक्ष्मजीवियों अथवा कोशिकाओं को कृत्रिम पोषक माध्यम पर उगाने के लिए इसका उपयोग होता है; जिसे पी.डी.ए. या 'पोटेटो-डेक्स्ट्रोज़ अगर' कहते हैं। इस संवर्द्धन माध्यम पर सूक्ष्म जीवियों को फलते-फूलते देखना कम रोमांचक नहीं होता।

साधारण-सा दिखने वाला यह बेडौल मटमेला भूरा आलू कितने असाधारण महत्व का है, है न?

किशोर पंवार – सेंधवा, खरगोन, म.प्र. में स्नातकोत्तर महाविद्यालय में वनस्पति विज्ञान पढ़ाते हैं।

संवर्धन और आलू

जिस प्रकार प्रत्येक जीव को जीवित रहने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है उसी तरह सूक्ष्मजीवों को संवर्धित करने के लिए भी एक माध्यम की ज़रूरत होती है। ये माध्यम ही इन सूक्ष्मजीवों के लिए भोजन का कार्य करता है।

सूक्ष्मजीवियों का भोजन और आवास जिस माध्यम में से मिलता है उसे संवधन माध्यम कहते हैं। इसमें विभिन्न तत्व जैसे हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, सल्फर, फॉस्फोरस, कैल्शियम, मैग्निशियम, निकल, कोबाल्ट, बेरियम आदि होते हैं। विभिन्न सूक्ष्मजीवी अलग-अलग तरह का भोजन लेते हैं – कुछ प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से तत्वों को ग्रहण करते हैं जबकि कुछ यौगिकों से पोषण प्राप्त करते हैं। अतः सूक्ष्मजीवियों का अध्ययन करते वक्त हमें अक्सर एक आदर्श संवर्धन माध्यम की ज़रूरत पड़ती है।

सरलतम संवधन माध्यम पी.डी.ए. (पोटेटो डेक्सट्रोज़ अगर) है अर्थात इसे आलू, डेक्सट्रोज़ (एक प्रकार की शर्करा) व 'अगर-अगर' के मिश्रण से बनाते हैं। इसमें 200 ग्राम छिलके वाले आलू, 10 ग्राम डेक्सट्रोज़ व 15 ग्राम 'अगर-अगर' लेते हैं। 'अगर-अगर' एक प्रकार की समुद्री शैवाल ग्रेसिलेरिया या गेलिडियम की भित्ति से प्राप्त होने वाला पदार्थ है।

पी.डी.ए. बनाने के लिए आलू के छोटे-छोटे टुकड़े करके 500-700 ग्राम पानी में इतना उबालते हैं कि आलू पूरी तरह पक जाए। अब इन उबले आलूओं को एक कपड़े में लेकर निचोड़ देने से सारा स्टार्च बीकर में आ जाता है। एक अलग बीकर में 'अगर-अगर'* पाउडर को पानी में मिलाकर गर्म करके घोल बनाया जाता है। अब स्टार्च का घोल, अगर-अगर का घोल और डेक्सट्रोज़ को मिलाकर पानी द्वारा पूरी मात्रा 1000 मि.ली. कर ली जाती है। इस मिश्रण को कोनिकल फ्लास्क में डालकर रूई का कॉर्क जैसा बनाकर फ्लास्क के मुंह को बंद कर देते हैं। रूई को लगभग एक इंच फ्लास्क के मुंह के अंदर तक इस तरह डालते हैं कि ये रूई न तो बहुत टाइट हो, न ही बहुत लूज़। इस रूई के ऊपर कागज़ लपेटकर धागा बांध देते हैं जिससे फ्लास्क को जीवाणुरहित करते समय रूई गीली न हो जाये। संपूर्ण पी.डी.ए. घोल को अलग-अलग कोनिकल फ्लास्क में डालकर इसी प्रकार बंद कर देते हैं। अब इन सभी फ्लास्क को जीवाणुरहित करते हैं। इस तरह सूक्ष्मजीवों के फलने-फूलने के प्रयोग करने के लिए पी.डी.ए. माध्यम तैयार हो जाता है।

अगर-अगर 'चाइना ग्रास' के नाम से बाज़ार से खरीदा जा सकता है। 'चाइना ग्रास' का इस्तेमाल आइस्क्रीम बनाने में अक्सर किया जाता है और ये बाज़ार में आसानी से उपलब्ध है।

जंतु-जगत

.. ये मुसाफिर दुनिया के

अरविंद गुप्ते

पक्षियों, जंतुओं का प्रवास वैज्ञानिकों के लिए हमेशा से उत्सुकता का विषय रहा है। आखिर साल के एक खास हिस्से और खास मौसम में वे कहां जाते हैं? जाने के लिए कौन-सा रास्ता चुनते हैं? . . . आदि-आदि; और भी ढेरों सवाल। जंतुओं की ऐसी ही दुनिया की खोज-खबर।

जब गर्मी का मौसम अपने पूरे शबाब पर होता है तब हम सोचते हैं, "कितना अच्छा होता यदि किसी ठंडे स्थान पर हमें दो-तीन महीने रहने के लिए मिल जाता।" लेकिन आज आम आदमी के लिए तो यह एक सपना भर है।

आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि कई पक्षी हर वर्ष हज़ारों किलोमीटर की यात्रा करते हुए गर्मी के दिनों में ठंडे स्थानों पर और ठंड में गरम स्थानों पर पहुंचते हैं। पूरी दुनिया में इस प्रकार के प्रवासी पक्षी पाए जाते हैं। भारत के मैदानी इलाकों में भी ठंड के दिनों में दर्ज़नों ऐसी प्रजातियों के पक्षी दिखाई पड़ते हैं जो फरवरी-मार्च में गायब हो जाते हैं यानी वे ठंडे स्थानों के लिए रवाना हो जाते हैं। सितम्बर-अक्टूबर में ये पक्षी फिर दिखाई देने लगते हैं।

भारत के उत्तर में दुनिया की सबसे बड़ी पर्वत शृंखला (हिमालय) है जहां भारत में आने वाले अधिकांश प्रवासी पक्षी गर्मी का मौसम बिताते हैं। कुछ प्रवासी पक्षी हिमालय में न रुकते हुए और उत्तर की ओर उड़ते-उड़ते यूरोप पहुंच जाते हैं तो कुछ अन्य इससे भी आगे बढ़ते हुए साइबेरिया के बर्फीले मैदानों तक उड़ान भरते हैं। भरतपुर के
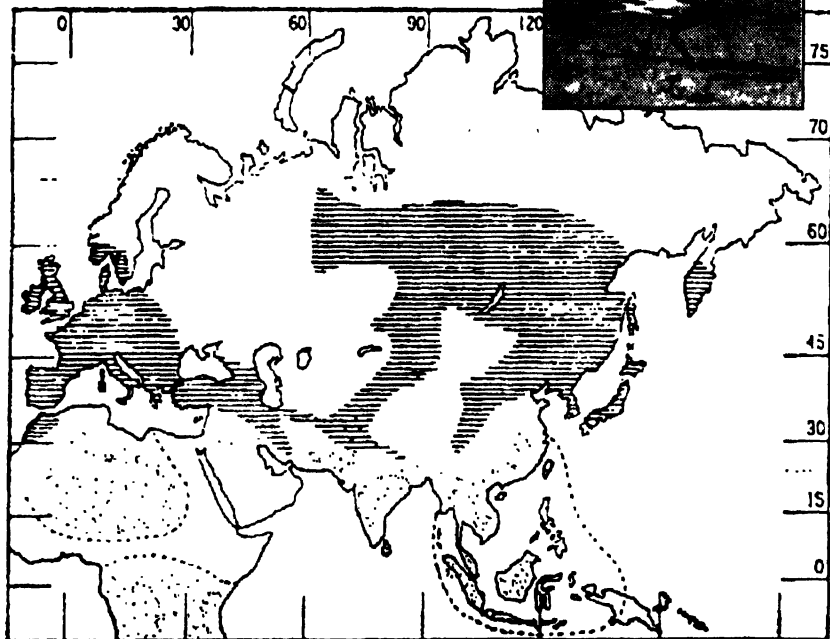
गर्मियां यहां बिताते हैं — जाड़े का मौसम यहां बिताते हैं

पक्षी अभयारण्य में प्रति वर्ष पहुंचने वाले साइबेरियाई सारसों के बारे में आपने सुना ही होगा। प्रवासी पक्षी ठंडे प्रदेशों में ही प्रजनन करते हैं।

खंजन की महिमा

भारत में आने वाले प्रवासी पक्षियों में शायद सबसे परिचित खंजन (जोबिन) है। सफेद या हल्के स्लेटी रंग के ये छोटे पक्षी शरद ऋतु में आ कर पूरे देश में फैल जाते हैं। कवि ने ठीक ही कहा है:

जानि शरद ऋतु खंजन आए
पाई समय जिमि सुकृत सुहाए।

पूंछ को लगातार ऊपर-नीचे करते हुए ये पक्षी ज़मीन पर दौड़-दौड़ कर अपना भोजन ढूंढते रहते हैं। खंजन,

गर्मी की ऋतु काश्मीर और पश्चिमी पाकिस्तान के पहाड़ों में बिताते हैं।

थिरथिरा एक अन्य प्रवासी पक्षी है जिसे आसानी से पहचाना जा सकता है। गौरैया के आकार के इस पक्षी का सिर और शरीर के ऊपर का भाग काला होता है जबकि पैर और वक्ष भगवे रंग के होते हैं। इसके शरीर का पिछला भाग रह-रहकर थरथराता है जिसके कारण ही इसे थिरथिरा कहते हैं। यह पक्षी गर्मी के मौसम में हिमालय के पूर्वी भाग में चला जाता है।

कहां जाते हैं सुरखाब

भारतीय प्रवासी पक्षियों में एक और उदाहरण यहां पर्याप्त होगा। जाड़े की रातों में तालाबों और नदियों से आने वाली 'कांकों-कांकों' की आवाज़ से तो आप परिचित होंगे ही। यह आवाज़ एक सुंदर बत्तख की है जिसे सुरखाब या चकवा-चकवी कहते हैं। गर्मी के दिनों में सुरखाब तिब्बत और लद्दाख में स्थित झीलों में पहुंचते हैं और इन्हीं के किनारों पर प्रजनन करते हैं।

प्रवासी पक्षियों की एक विशेषता यह भी है कि प्रति वर्ष उसी स्थान पर पहुंचते हैं जहां पिछले वर्ष पहुंचे थे। गर्मी के मौसम में वे जहां प्रजनन करते हैं, वे यही कोशिश करते हैं कि ठीक उसी स्थान पर घोंसला बनाएं जहां पिछले साल बनाया था। बम्बई के एक मकान के अहाते में स्थित लॉन (जो कि एक कमरे से कुछ ही बड़ा था) पर एक ही खंजन लगातार 5 वर्ष तक ठंड के मौसम में पहुंचा। आश्चर्य की बात
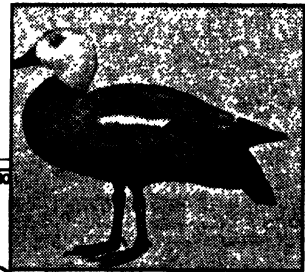
सुरखाब का प्रवास
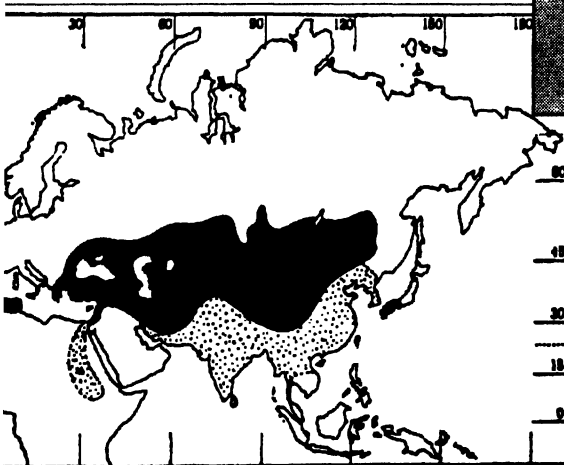
गर्मी में यहां रहते हैं जाड़े के मौसम में यहां रहते हैं

पैरों में छल्ला: पक्षियों की प्रवास की आदतों के बारे में जानकारी इकट्ठा करने के लिए पक्षी विज्ञानी तरह–तरह के तरीके इस्तेमाल में लाते हैं, जैसे कि पैरों में छल्ला पहनाना। इस छल्ले पर इसके पकड़े जाने का स्थान और तारीख खुदी होती है। यदि यह पक्षी दुबारा कहीं पकड़ा जाता है तो संबंधित पक्षी विज्ञानी को तुरंत खबर की जाती है। इस तरह पक्षी के प्रवास स्थल तक पहुंचने के रास्ते को खोज पाना संभव हो जाता है।

यह है कि यह पक्षी काश्मीर से लगभग दो हज़ार किलोमीटर की यात्रा करके प्रति वर्ष सितम्बर माह की एक निश्चित तारीख को ही बम्बई पहुंचता था।

. . पैरों में छल्ला और. .

भारत में जाड़े का मौसम बिताने वाले जो प्रवासी पक्षी यूरोप, साइबेरिया तथा चीन से आते हैं उन्हें हिमालय पर्वत शृंखला तो लांघनी ही पड़ती है। इनमें से कुछ पश्चिम में सिंधु नदी के दर्रे से, कुछ पूर्व में ब्रह्मपुत्र के दर्रे से और कुछ अन्य दर्रों से आते हैं। कुछ प्रवासी पक्षी इस प्रकार का लम्बा चक्कर काटने के बजाए बहुत अधिक ऊंचाई पर उड़ते हुए हिमालय की बर्फीली चोटियों पर से उड़ कर आ जाते हैं।

सवाल यह उठता है कि यह कैसे पता चलता है कि वही पक्षी हर वर्ष उसी स्थान पर पहुंचता है या कौन-सी प्रजाति के पक्षी गर्मी के मौसम में किस देश में पहुंचते हैं?

प्रवासी पक्षियों को जाल में पकड़ कर उनके पैरों में प्लास्टिक या एल्युमीनियम के हल्के छल्ले डाल दिए जाते हैं। इन छल्लों पर कोई संख्या या उस व्यक्ति का पता लिखा होता है जो छल्ला डालता है। जब ये पक्षी किसी अन्य स्थान पर पकड़े जाते हैं तो उस स्थान के नाम और पकड़े जाने के दिनांक की सूचना छल्ला पहनाने वाले व्यक्ति को दी जाती है।

बम्बई पहुंचने वाले जिस खंजन के बारे में ऊपर लिखा गया है उसके पैर में पहनाए गए छल्ले की वजह से ही उसे पहचाना जा सका था।

आर्कटिक टर्न की यात्रा

प्रवासी पक्षियों में प्रति वर्ष सबसे अधिक लंबी यात्रा करने वाले पक्षी का नाम आर्क्टिक टर्न है। कैनेडा के उत्तरी भाग,ग्रीनलैंड और नॉर्वे में पाया जाने वाला यह पक्षी जाड़े में दक्षिण की ओर उड़ कर 20,000 किलोमीटर दूर अंटार्क्टिका महाद्वीप पहुंचता है। इसका मतलब यह हुआ कि यह पक्षी प्रति वर्ष 40,000 किलोमीटर की यात्रा करता है। कुछ पक्षी अपनी वार्षिक यात्रा के दौरान निश्चित पड़ावों पर कुछ दिनों के लिए रुकते हैं, भोजन करते हैं और थकान मिटने पर फिर अपनी यात्रा पर चल पड़ते हैं। कुछ अन्य पक्षी अपनी यात्रा कहीं भी रुके बिना तय करते हैं। बिना रुके एक ही उड़ान में मंज़िल तक पहुंचने वाले पक्षियों में प्रमुख गोल्डन प्लवर नामक पक्षी हैं जो अमेरिका महाद्वीप के उत्तरी छोर पर स्थित

आर्कटिक टर्न का यात्रा पथ: कैनेडा, ग्रीनलैंड और नॉर्वे में मिलने वाला यह पक्षी जाड़े में प्रवास के लिए अंटार्कटिका पहुंचता है। इसका यह यात्रा पथ, आने-जाने का मिलाकर करीब 40 हजार किलोमीटर का होता है। नक्शे में इसका यात्रा पथ दिखाया गया है; इससे समझ में आता है कि किस तरह ये समुद्र तट के किनारे-किनारे उड़ते हुए इतनी लंबी यात्रा करता है।

B *प्रजनन के स्थान*
M *प्रवास की जानकारी रखने वाले केंद्र*
R *पक्षियों के प्रवास का रास्ता जानने के लिए उन्हें यहां पकड़ा जाता है*
W *जाड़ा*

अलास्का प्रदेश से लगभग 8,500 किलोमीटर दूर प्रशांत महासागर में स्थित मारक्वेराज़ द्वीप पहुंचते हैं। चूंकि ये पूरा सफर समुद्र के ऊपर उड़ते हुए तय करते हैं और इन दो स्थानों के बीच आज तक कोई गोल्डन प्लवर नहीं पाया गया है, यह माना जा सकता है कि ये पक्षी इस दूरी को प्रति वर्ष दो बार बिना रुके उड़ते हुए तय करते हैं।

अब तक यह तो स्पष्ट हो चुका होगा कि अधिकांश पक्षी इस प्रकार की लंबी यात्राएं नहीं करते। कौआ, गौरैया, कबूतर, मैना, आदि पक्षी एक ही स्थान पर रहते हुए ज़िंदगी गुज़ार देते हैं। हां, कुछ पक्षी ज़रूर थोड़ी दूर तक प्रवास करते हैं जो कि अधिक से अधिक कुछ सौ किलोमीटर तक हो सकता है। इस प्रकार के प्रवास को स्थानीय प्रवास कहते हैं। नीलकंठ, दूधराज, हुदहुद और पीलक ऐसे परिचित पक्षी हैं जो स्थानीय प्रवास करते हैं।

ईल और समुद्र की छानबीन

प्रवासी पक्षियों के आवागमन का पता लगाना तुलनात्मक दृष्टि से आसान है, किन्तु अन्य जंतुओं के प्रवास के बारे में पता लगाना काफी कठिन काम है। फिर भी वैज्ञानिकों द्वारा अन्य जंतुओं के प्रवास के बारे में किए गए अध्ययन भी कम आश्चर्यजनक नहीं हैं। इनमें सबसे अधिक हैरतअंगेज़ उदाहरण ईल नामक मछली का है।

दो से चार फीट लंबी और सांप के समान दिखाई पड़ने वाली ईल यूरोप और अमेरिका महाद्वीपों की नदियों, झीलों और तालाबों में पाई जाती है। सदियों से यूरोप और अमेरिका के निवासी देखते आए हैं कि प्रति वर्ष लाखों की संख्या में ईल मछलियां नदियों में तैरती हुई अटलांटिक समुद्र की ओर जाती हैं और सांप के बच्चों के समान छोटी-छोटी मछलियां प्रति वर्ष समुद्र से आकर नदियों तालाबों में जाती हैं।

किन्तु क्या इनका आपस में कोई संबंध है? ईल मछलियां कहां जाती हैं और क्यों जाती हैं? छोटी मछलियां कहां से आती हैं? इन प्रश्नों के उत्तर किसी के पास नहीं थे। लगभग 75 वर्ष पूर्व इटली के दो वैज्ञानिकों, ग्रासी और कैलेन्ड्रुथियो ने ईल का रहस्य सुलझाने का बीड़ा उठाया। उन्होंने एक जहाज़ लेकर उससे अटलांटिक महासागर के यूरोप और अमेरिका के बीच के भाग का चप्पा-चप्पा छान मारा। इस प्रवास के फलस्वरूप ईल के प्रवास के बारे में जो जानकारी मिली वह किसी परी-कथा से कम नहीं है।

अपने पूरे जीवनकाल में ईल मछलियां बड़ी पेटू होती हैं। मृत या जीवित किसी भी जंतु को ये नहीं छोड़तीं। यहां तक कि छिपकलियां और मेंढकों की तलाश में पानी से निकल कर ज़मीन पर भी रेंगने लगती हैं।

10 से 20 वर्ष की आयु में इनके प्रजनन के अंग परिपक्व हो जाते हैं। ऐसा होने पर नर-मादा ईल भोजन
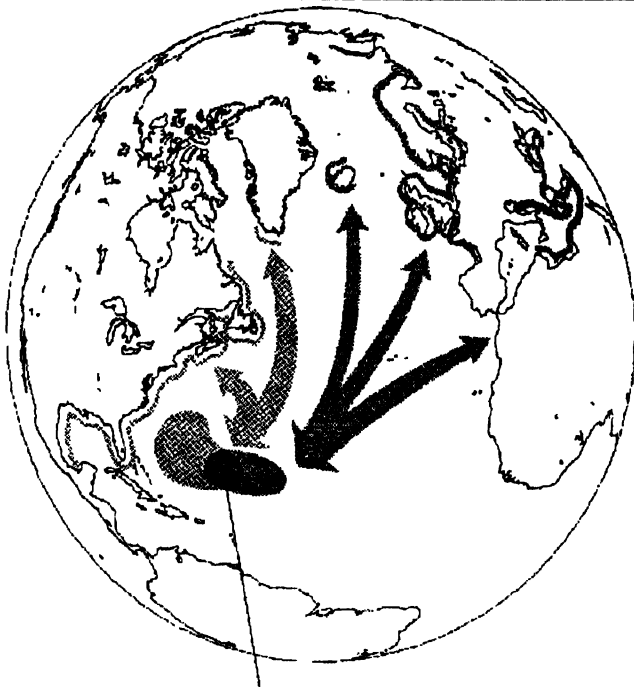
सरगासो समुद्र

'ईल' का अंतिम सफर: अमेरिका और यूरोप में मिलने वाली ईल मछलियां जब परिपक्व हो जातीं हैं तो भोजन लेना छोड़ देती हैं और अटलांटिक महासागर स्थित सरगासो समुद्र की ओर चल पड़ती हैं। वहां पहुंचकर ये प्रजनन करती हैं और अंडे देती हैं। तुरंत बाद नर और मादा दम तोड़ देते हैं।

अंडों मे निकलने वाले लार्वा जो करीब छह मि. मी. लंबे और चपटे होते हैं, लहरों पर उतराते उस स्थान की ओर चल पड़ते हैं जहां से उनके माता-पिता आए थे।

ऊपर नक्शे में: सरगासो समुद्र और ईल का यात्रा पथ दिखाया गया है।

नीचे: ईल का लार्वा और ईल ।

लेना बंद कर देती हैं और अपने जीवन की अंतिम यात्रा पर निकल पड़ती हैं। झीलों, नदी-नालों से लाखों ईल एक ही धुन ले कर अटलांटिक महासागर में पहुंचती हैं। फिर ये बिना भोजन लिए पश्चिम की ओर तैरते हुए अटलांटिक महासागर के उस भाग में पहुंचती हैं जिसे 'सरगासो समुद्र' कहा जाता है। इस यात्रा में इन्हें एक वर्ष लग जाता है। 'सरगासो समुद्र' में पहुंच कर नर और मादा ईल प्रजनन करती हैं और फिर थकान के कारण दोनों वहीं दम तोड़ देती हैं। इनके अंडों से निकलने वाले बच्चे पूर्व की ओर स्थित यूरोप के किनारे की ओर चल पड़ते हैं – उस मंज़िल की तलाश में जहां से उनके माता-पिता आए थे, लेकिन जिसे उन्होंने स्वयं कभी नहीं देखा। पारदर्शी पत्तों के समान दिखने वाले ये चपटे आकार के बच्चे लहरों पर उछलते-कूदते हुए अपना सफर तय करते हैं। इस यात्रा के दौरान करोड़ों ईल बच्चे अन्य जंतुओं के शिकार बन जाते हैं किन्तु बचे-खुचे बच्चे भी लाखों की संख्या में होते हैं और ये तीन वर्ष में वह दूरी तय करते हैं जिसे इनके माता-पिता ने एक वर्ष में तय किया था। यूरोप के किनारे पहुंचते पहुंचते इन बच्चों का आकार चपटे से गोल हो जाता है और फिर ये बड़ी नदियों में होते हुए छोटे से नदी-नालों और तालाबों में पहुंचते हैं। मीठे पानी में 10-20 वर्ष बिताने के बाद इनके भी जीवन का अंत 'सरगासो समुद्र' में ही होता है जहां ये पैदा हुए थे। ईल मछली की इस आश्चर्यजनक दास्तान में एक अध्याय और जुड़ जाता है जब हम अमेरिकी ईल मछलियों के प्रवास को देखते हैं। अमेरिका महाद्वीप के तालाबों और नदी-नालों में पाए जाने वाली ईल भी, प्रजनन के लिए 'सरगासो समुद्र' में ही आती हैं। किन्तु यह स्थान अमेरिका के अधिक पास होने के कारण उन्हें इस यात्रा में लगभग चार माह लगते हैं और इनके बच्चों को समुद्र से मीठे पानी की यात्रा में लगभग एक साल। इसलिए जहां यूरोप की ईल मछलियों के बच्चे अपनी चपटी अवस्था से गोल आकार में आने के लिए तीन साल लेते हैं, वहीं अमेरिका की ईल मछलियों के बच्चों में यह परिवर्तन एक साल में ही हो जाता है। मज़ेदार बात यह है कि एक ही स्थान पर विपरीत दिशा से आकर प्रजनन करने के बाद अपनी इहलीला समाप्त कर देने वाली ईल मछलियों के बच्चे कभी राह नहीं भूलते। आज तक न तो अमरीकी ईल का कोई बच्चा यूरोप में पाया गया है और न यूरोप की ईल का बच्चा अमेरिका में।

सॅमन की कुदान

अन्य कुछ मछलियां भी प्रवास करती हैं, चाहे वे इतनी लंबी दूरियां न तय करती हों जितनी ईल करती हैं।

अमेरिका के तट पर पाई जाने वाली सॅमन (salmon) मछली इनमें प्रमुख है। किन्तु इसका जीवन चक्र, ईल के

एक झरने के ऊपर, प्रवाह की दिशा के विपरीत छलांग लगाती सॅमन मछलियां।

से ठीक उलटा है। जहां ईल मीठे पानी में अपना जीवन गुज़ार कर प्रजनन के लिए समुद्र में जाती है, वहां सॅमन अपना जीवन समुद्र में गुज़ारती है। प्रजनन अंगों के परिपक्व होने पर ईल की तरह नर और मादा सॅमन पर भी मानो एक जुनून सवार हो जाता है और वे भोजन लेना बंद कर देती हैं। समुद्र में मिलने वाली बड़ी नदियों से होती हुई ये मछलियां प्रवाह की विपरीत दिशा में तैरती हुई, छोटी नदियों में और नालों में पहुंचती हैं और अंत में उथले पानी वाले उन स्थानों पर पहुंचती हैं जहां इन नदी-नालों का उद्‌गम स्थान होता है। इस जी तोड़ मेहनत के बाद जब वे अपनी मंज़िल पर पहुंचती हैं तब इतनी थक चुकी होती हैं कि प्रजनन करने के बाद या तो वे वहीं दम तोड़ देती हैं या फिर बेबस होकर पानी के प्रवाह के साथ बहती चली जाती हैं। इनके बच्चे कुछ दिन अपने जन्म स्थान पर बिताने के बाद जब पर्याप्त रूप से बड़े हो जाते हैं तो समुद्र की ओर चल पड़ते हैं, जहां वे अपना शेष जीवन

बिताते हैं। छल्ले पहनाने के प्रयोगों से पता चला है कि जब ये बच्चे बड़े होकर प्रजनन के लिए मीठे पानी में आते हैं तब ठीक उसी स्थान पर पहुंचने की कोशिश करते हैं जहां उनका जन्म हुआ था।

अमेरिका की छोटी-बड़ी नदियों पर बने बांधों पर से गिर रहे पानी में प्रजनन के मौसम में अनगिनत सॅमन मछलियां कूद-कूद कर बांध को लांघने की कोशिश करती हुई दिखाई देती हैं। कई बांधों के पास मत्स्य पालन विभाग ने सीढ़ीनुमा कुंड बनाए हैं जिनकी सहायता से ये मछलियां आसानी से बांध को पार कर जाती हैं।

भारत के समुद्रतट पर भी बंगाल की खाड़ी में पाई जाने वाली हिलसा मछलियां प्रजनन के लिए गंगा नदी में आती हैं। एक समय ये इलाहाबाद तक बड़ी संख्या में आ जाती थीं किन्तु अब गंगा पर बने बांधों और बढ़ते प्रदूषण के कारण ये अपने इच्छित स्थान पर प्रजनन के लिए नहीं पहुंच पाती हैं और इनकी संख्या प्रति वर्ष घटती जा रही है।

कछुए और तितली भी

प्रजनन के लिए हर वर्ष प्रवास करने वाली केवल मछलियां ही नहीं हैं। कई स्तनधारी जैसे व्हेल और सील (ये दोनों जंतु समुद्र में रहते हैं), कुछ हिरन (अफ्रिका में पाया जाने वाला विल्डे बीस्ट और उत्तरी अमेरिका में पाया जाने वाला कैरीबू) और बायसन प्रजनन के लिए प्रति वर्ष सैकड़ों किलोमीटर की यात्रा करते हैं।

उत्तरी अमेरिका और अफ्रिका के समुद्रतट पर रहने वाले 'लेदर बैक टर्टल'

प्रवास करने के लिए जाता विल्डे बीस्ट
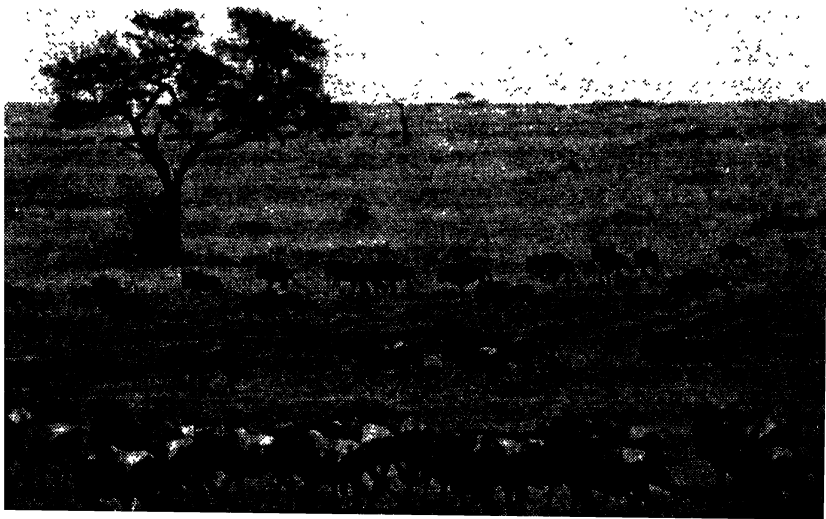
मोनार्क तितलियों का झुंड

नामक कछुए प्रजनन करने के लिए प्रतिवर्ष 5,000 किलोमीटर की यात्रा करते हुए दक्षिणी अमेरिकी देश फ्रेंच गुयाना के तट पर पहुंचते हैं जहां मादाएं रेत में अंडे देती हैं। इसी प्रकार दक्षिण अमेरिकी देश ब्राज़ील के तट पर रहने वाले 'ग्रीन बैक' कछुए 1800 किलोमीटर की दूरी तय करके अटलांटिक महासागर में स्थित छोटे से एसेन्शन द्वीप के तट पर पहुंचते हैं। वहां समुद्र के किनारे रेत में अंडे देने के बाद ये ब्राज़ील लौट जाते हैं।

संभवतः ये कछुए अंडे देने के लिए सुरक्षित स्थान की खोज में इतनी लंबी यात्राएं करते हैं। हिन्द महासागर में पाए जाने वाले ग्रीनबैक और लेदरबैक प्रजाति के कछुओं को इतनी लंबी यात्राएं इसलिए नहीं करनी पड़ती क्योंकि उन्हें अंडमान-निकोबार द्वीप समूह में अंडे देने के कई सुरक्षित स्थान मिल जाते हैं।

इन बड़े जंतुओं के अलावा कुछ कीट भी मुसाफिरी करते हैं। उत्तरी अमेरिका में पाई जाने वाली मोनार्क तितलियां
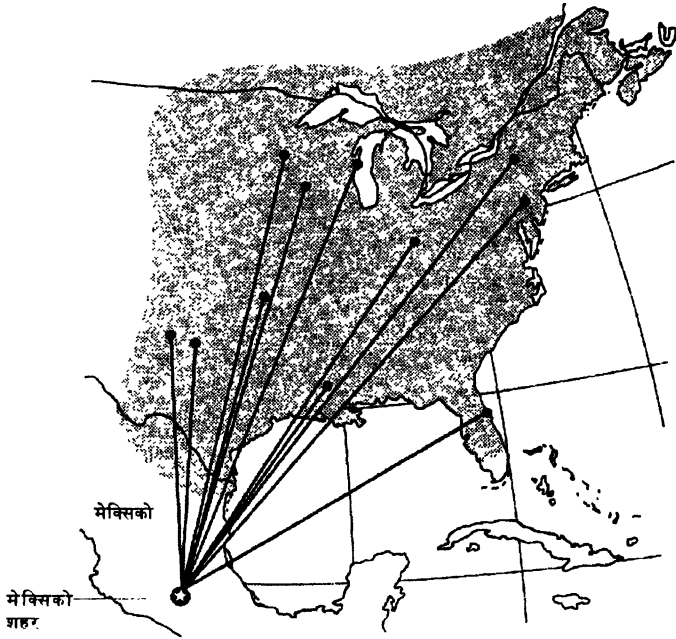
मोनार्क तितलियों का प्रवास पथ

प्रति वर्ष लाखों की संख्या में उड़कर मेक्सिको के पहाड़ी इलाके में जाड़े का मौसम बिताने के लिए पहुंचती हैं। इस यात्रा में ये तितलियां 1000 से लेकर 2500 किलोमीटर तक की दूरी तय करती हैं। रोचक तथ्य यह है कि इस प्रजाति की सभी तितलियां प्रवास नहीं करतीं। ये तितलियां अपने अंडे मिल्कवीड नामक पौधे पर ही देती हैं। उत्तरी अमेरिका के जिन भागों में यह पौधा पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है वहां की तितलियां प्रवास नहीं करतीं। जिन भागों में यह पौधा नहीं पाया जाता उन भागों से ही मोनार्क तितलियां मेक्सिको पहुंचती हैं जहां यह पौधा बहुतायत से होता है। प्रवासी तितलियों को एक और लाभ होता है। उत्तरी अमेरिका के जो इलाके उत्तरी ध्रुवीय प्रदेश के करीब हैं, वहां जाड़े के मौसम में कभी-कभी तापमान एकदम इतना कम हो जाता है कि पानी जम जाता है। तापक्रम में इस प्रकार अचानक बहुत अधिक गिरावट आना तितलियों के लिए जानलेवा होता है। अतः वे इस खतरे से बचने के लिए लंबी यात्रा का खतरा उठाना बेहतर समझती हैं।

अरविंद गुप्ते: प्राणी शास्त्र के प्राध्यापक। भोपाल स्थित प्रशासन अकादमी में कार्यरत। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध।

ज़रा सिर तो खुजलाइए
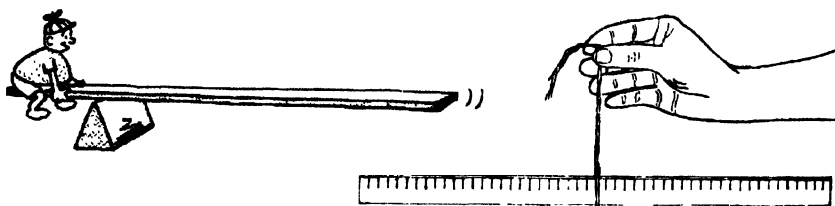
कैसे बनाया बच्चे ने संतुलन

पिछले अंक में पूछा गया सवाल: कोई भी बच्चा इस लड़के के साथ खेलने को तैयार नहीं है। लेकिन इसे कोई परवाह नहीं। उसने झूलने के लिए क्या तरकीब लगाई?

किसी पार्क में जाकर झूले के पटिए को उखाड़कर इस तरह की छेड़-छाड़ करना तो शायद हर किसी के लिए संभव नहीं होगा! इसलिए इस सवाल में जो स्थिति दर्शाई गई है कि नीचे का आधार ठीक बीचों-बीच न होने के कारण झूला दाहिनी ओर झुका हुआ है, आइए वैसी ही कुछ स्थिति बनाकर एक आसान-सा प्रयोग करके देखते हैं।

इस प्रयोग में झूले के पटिए की जगह एक फुट या आधा मीटर का लकड़ी का पैमाना इस्तेमाल करते हैं और नीचे लगे तिकोने आधार की जगह धागे का एक टुकड़ा।

चित्र (अगले पेज पर) में दिखाए मुताबिक लटकाए गए पैमाने को, धागे को इधर-उधर खिसकाकर संतुलित किया जा सकता है। यह तो बन गया एक साधारण संतुलित झूला। अब कल्पना के घोड़े इसके दोनों सिरों पर बिठाकर बाकायदा झूला झूल सकते हैं!

प्रश्न जैसी स्थिति पैदा करने के लिए इस धागे को थोड़ा-सा बाईं तरफ सरका देते हैं। स्वाभाविक है कि ऐसा करने पर दाहिनी तरफ का भारी हिस्सा नीचे को झुक जाएगा।

अब मान लीजिए एक छोटा-सा गुड्डा बनाकर बाईं तरफ की बाजू पर टिका दिया तो क्या होगा? पैमाना बाईं तरफ झुक जाएगा या पहले की तरह दाहिनी तरफ ही झुका रहेगा? अगर आपने कभी ऐसा प्रयोग करके देखा हो तो आप झट से कह देंगे कि बाईं तरफ गुड्डा रखने पर पैमाने किस तरफ झुकेगा, वो तो इस बात पर निर्भर करता है कि गुड्डा बीच वाले धागे से कितनी दूरी पर रखा हुआ
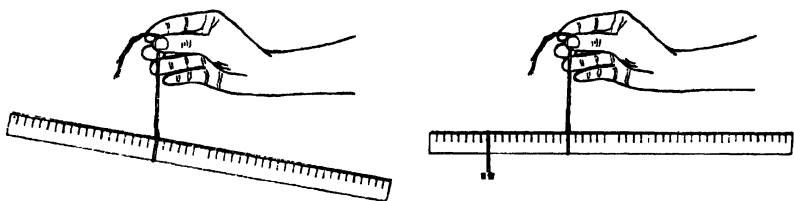
है। यानी कि अगर गुड्डा धागे के बहुत करीब रखा जाए तो पैमाना पहले की तरह दाईं ओर झुका रहेगा। धीरे-धीरे उसे धागे से दूर सरकाने पर आप पाएंगे कि अब पैमाना संतुलित अवस्था में आ गया है यानी किसी भी ओर झुका हुआ नहीं है। और अगर गुड्डे को बाईं ओर एकदम किनारे की तरफ ले जाएं तो पैमाना बाईं तरफ झुक जाता है। अगर इतनी बात समझ में आ गई हो तो वापस अपने सवाल पर लौट सकते हैं। यानी कि झूले पर बैठा हुआ लड़का पटिए के बाएं वाले हिस्से में एक ऐसा बिन्दु ढूंढ सकता है जहां बैठने पर झूला संतुलित हो जाएगा। उस बिन्दु से थोड़ा आगे की ओर (दाहिनी तरफ) सरकने पर झूले का दाहिना हिस्सा नीचे झुक जाएगा और थोड़ा पीछे की ओर (बाईं तरफ) सरकने पर झूले का बायां हिस्सा नीचे की तरफ आ जाएगा।

तो बस यही है जवाब – किसी अन्य बच्चे की गैरमौजूदगी में इस बच्चे ने पूरी व्यवस्था ऐसी जमा ली कि बस खुद को थोड़ा-सा आगे या थोड़ा-सा पीछे सरकाकर पटिए पर झूला जा सकता है और दो लोगों का मज़ा भी अकेले ही लूटा जा सकता है!

बच्चे का झूलना और बल आघूर्ण

इस बच्चे ने अकेले झूला झूलने का जो तरीका खोजा है उसे 'बल आघूर्ण' का सिद्धांत भी कहते हैं। सरल रूप में इस सिद्धांत को ऐसे समझा जा सकता है कि किसी भी संतुलित पैमाने पर एक तरफ लटकाया गया छोटा वज़न दूसरी तरफ लटकाए गए भारी वज़न को भी संतुलित कर सकता है। एक-दूसरे को संतुलित करने के लिए उन्हें कहां लटकाना पड़ेगा यह इस नियम से तय होता है:
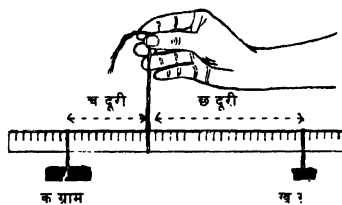
बाईं तरफ लटकाया गया वज़न × उस वज़न की संतुलन बिन्दु से दूरी =
दाहिनी तरफ लटकाया गया वज़न × उस वज़न की संतुलन बिन्दु से दूरी

'क' ग्राम × 'च' से. मी. = 'ख' ग्राम × 'छ' से. मी.

आप खुद यह प्रयोग एक पैमाने, धागे के टुकड़े और छोटे-बड़े पत्थरों या बांट की मदद से कर सकते हैं।

इस बार का ज़रा सिर तो खुजलाइए पृष्ठ 54 पर।

कहानी

● जे. बी. एस. हाल्डेन
भावानुवादः अरविंद गुप्ता
रेखाचित्रः क्वेंटन ब्लेक
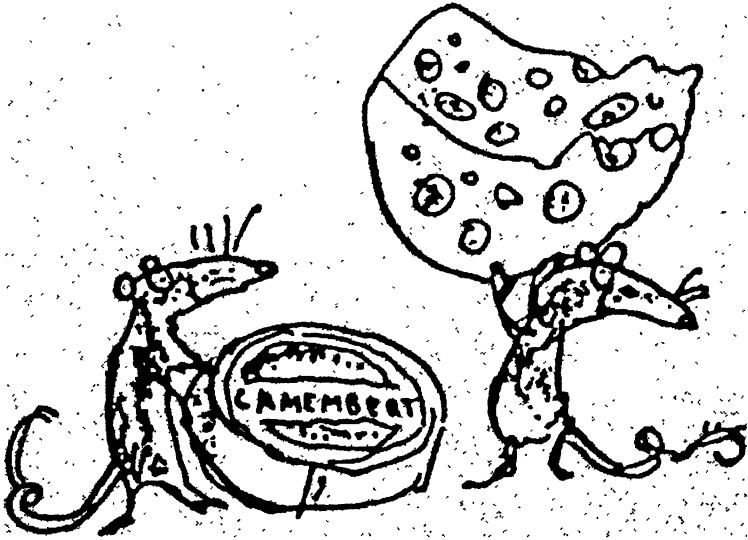
बहुत समय पहले की बात है। इंग्लैण्ड में स्मिथ नाम का एक आदमी रहता था। उसकी सब्ज़ी की दुकान थी। स्मिथ के चार बेटे थे। सबसे बड़े लड़के का नाम जॉर्ज था। इसे साफतौर पर राजा के नाम के ऊपर रखा गया था। यह बात तय थी कि बड़ा होकर जॉर्ज ही अपने पिता की दुकान संभालेगा। इसलिए स्कूल में उसने वनस्पति-शास्त्र का एडवांस कोर्स किया। यहां उसने पत्तागोभियों की एक सौ सत्तावन अलग-अलग किस्मों का अध्ययन किया और पालक की चवालिस विभिन्न प्रजातियों के बारे में जानकारी हासिल की। उसने जीवशास्त्र के कोर्स में पत्तागोभी में रहने वाली सतत्तर अलग-अलग नस्लों की इल्लियों (कैटरपिलरों) को पहचानना सीखा। उसने पत्तागोभियों पर विभिन्न देशी कीट-नाशकों का छिड़काव किया। इन प्रयोगों के परिणाम काफी आश्चर्यजनक निकले।

साबुन का घोल छिड़कने पर पत्ता-गोभियों में से हरे रंग की इल्लियां बाहर निकलीं। तम्बाकू का रस छिड़कने पर चितकबरी इल्लियां और नमक का घोल छिड़कने पर मोटी-मोटी भूरी इल्लियां बाहर निकलीं। जब वह बड़ा हुआ, तो उसकी सब्ज़ी की दुकान पूरे लंदन शहर में सबसे मशहूर हुई। उसकी पत्तागोभी में कभी भी किसी को कोई इल्ली या कीड़ा नहीं मिला।

परन्तु मिस्टर स्मिथ की सिर्फ एक ही दुकान थी। इसलिए उनके बाकी बेटों को दूसरे धंधों में अपना भाग्य आज़माना था। दूसरे बेटे को लोग 'जिम' कह कर बुलाते थे। पर वैसे उसका असली नाम जेम्स था। वह अंग्रेज़ी में तेज़ था और उसने स्कूल में अच्छे निबंध लिखकर सभी प्रतियोगिताओं में इनाम जीते थे। वह स्कूल की फुटबॉल टीम का कप्तान था और हमेशा हाफ-बैक की पोज़ीशन पर खेलता था। वह हाथ की सफाई और जादू के खेल दिखाने में बड़ा माहिर था।

स्कूल के मास्टर कई बार उसकी शैतानियों का शिकार बने थे। एक बार उसने ब्लैकबोर्ड पर लिखने वाली चॉक में छेद करके उसमें एक माचिस की तीली धंसा दी अगले दिन मास्टरजी ने जैसे ही बोर्ड पर चॉक से लिखा वह जल उठी। उसके बाद अगले पांच मिनटों तक क्लास

में कुछ भी पढ़ाई नहीं हो सकी। दूसरे दिन उसने सारी स्याही की दवातों में मेथिलेटिड स्पिरिट मिला दी। उसका असर यह हुआ कि स्याही ने पेन से चिपकना ही बंद कर दिया। तब मास्टरजी को सारी दवातों की स्याही बदलनी पड़ी। इसमें लगभग आधा घंटा लग गया। इसलिए उस दिन फ्रेंच की क्लास में कुछ खास पढ़ाई नहीं हो पाई। वैसे भी जिम को फ्रेंच से चिढ़ थी। पर वह कभी भी छोटी-मोटी हरकतें नहीं करता था। मिसाल के लिए उसने कभी भी ताले के छेद में गीला आटा या पुट्टी नहीं भरी। उसने मास्टरजी की दराज़ में कभी मरे चूहे भी नहीं छिपाए।

तीसरे लड़के का नाम चार्ल्स था। वह गणित और इतिहास के विषयों में काफी तेज़ था। वह अपनी क्रिकेट टीम में बाएं हाथ का गेंदबाज़ भी था। पर अगर वह किसी एक विषय में एकदम काबिल था, तो वह था रसायनशास्त्र यानी कैमिस्ट्री। पूरे स्कूल में वह शायद एकमात्र ऐसा लड़का था जिसने कभी पैरा-डीमिथाइल अमीनो बेंज़ेलडीहाइड बनाया हो। इस रसायन को बनाना बेहद कठिन है। वह सड़ी-से-सड़ी बदबुएं पैदा कर सकता था क्योंकि वह उनकी रासायनिक विधियां जानता था। चूंकि वह एक बहुत अच्छा लड़का था, उसने ऐसा कभी नहीं किया। अगर वह गंदी बदबूओं को पैदा

करता भी तो शायद उसे कैमिस्ट्री पढ़ने से रोक दिया जाता। लेकिन वह तो जीवन भर केवल कैमिस्ट्री ही पढ़ना चाहता था।

चौथे लड़के का नाम जैक था। वह पढ़ने-लिखने में कोई खास लायक नहीं था और न ही किसी खेल में बहुत अच्छा था। वह फुटबॉल की किक कभी सीधी नहीं मार पाता और क्रिकेट के मैच में वह एक बार फील्डिंग करते-करते ही

सो गया था। अगर वह किसी एक चीज़ में उस्ताद था तो वह था वायरलैस।

उसने अपने घर में खुद एक वायरलैस सैट बनाया था। केवल उसके वॉल्व उसने बाज़ार से खरीदे थे। इस कहानी की शुरूआत के समय वह वाल्व बनाना सीख रहा था। उसकी एक बूढ़ी नानी भी थीं – मटिल्डा। वे बेहद बूढ़ी थीं। लन्दन से लेकर डोवर तक की रेल लाइन उनके बचपन में बिछी थी। चल फिर तो वो सकती नहीं थीं, इसलिए हर वक्त पलंग पर ही लेटी रहती थीं। जैक ने उनके लिए एक जोड़ी 'ईयर-फोन' बना दिए थे। उन्हें लगाकर अब वे दिन भर संगीत सुनती रहतीं। ऐसा लगता था कि जैसे उनके जीवन में, महारानी विक्टोरिया के दिनों की बीती बहार अब दुबारा वापस आ गई हो।

जैक बिजली की तमाम जुगाड़ें बनाने में एकदम माहिर था। उसने अपने घर के बिजली मीटर में एक नई जुगाड़ फिट की थी। उससे बिजली के पंखे चलते और बल्ब भी जलते लेकिन मीटर आगे नहीं बढ़ता। हफ्ते भर तक रीडिंग एक ही जगह पर रुकी रही। जब उसके पिता को इसके बारे में पता चला तो वे बहुत नाराज़ हुए और उन्होंने कहा, "हमें इस तरह के गलत काम नहीं करना चाहिए। यह तो बिजली की चोरी करना हुआ।"

"मेरे ख्याल से इसमें कोई चोरी नहीं है," जैक ने जवाब दिया, "अव्वल तो बिजली कम्पनी कोई व्यक्ति नहीं है। दूसरी बात यह है कि बिजली हमारे बल्बों आदि से होकर लौटकर मेनलाईन में वापस चली जाती है। हम बिजली को कोई अपने पास थोड़े ही रखते हैं। उसे तो हम केवल चंद क्षणों के लिए उधार लेते हैं।" परन्तु उसके पिता ने जैक से मीटर पर लगी जुगाड़ हटा लेने को कहा। क्योंकि वह एक ईमानदार आदमी थे, इसलिए उन्होंने बिजली कम्पनी का सारा हरजाना भी भर दिया। मिस्टर स्मिथ की एक बेटी भी थी। वैसे उसका असली नाम लूसेल था, परन्तु लोग उसे 'पज़ी' के नाम से बुलाते थे। वैसे इस कहानी में उसका कोई खास रोल नहीं है। इसलिए मैं उसका ज़िक्र केवल अंत में करूंगा। बचपन में उसके दांत बाहर को निकले हुए थे, पर अंत में वह अपने सही स्थान पर पहुंच गए।

उस वक्त लन्दन के बन्दरगाह में चूहों ने तहलका मचा रखा था। वे बड़े खूंखार किस्म के चूहे थे। उनके दादा-परदादा चाय, अदरक, रेशम और चावल के बोरों में छिपकर स्टीमरों द्वारा हांग-कांग से

आए थे। क्योंकि इंग्लैण्ड में पर्याप्त मात्रा में अनाज पैदा नहीं होता है, इसलिए वहां खाने का तमाम माल अन्य देशों से मंगाया जाता है। विदेशों से आया खाने का सारा माल चूहे हजम कर जाते। वे कनाडा का गेहूं और हॉलैण्ड का पनीर खाते। वे न्यूज़ीलैण्ड से आया मटन और अरजेंटीना का ताज़ा मांस खाते। वे ईरान से आए बेहतरीन कालीनों को कुतर-कुतर कर अपने बिलों में ले जाते और वहां उनसे अपना बिस्तरा बनाते। माल हज़म करने के बाद वे चीन से आए रेशमी रूमालों से अपने हाथ-मुंह पोंछते।

जो व्यक्ति लन्दन के सारे
का प्रमुख होता है वह लन्दन पोर्ट अथॉरिटी के चेयरमैन के नाम से जाना जाता है। यह एक बहुत ऊंचा ओहदा है। चेयरमैन के दफ्तर की शोहरत इंग्लैण्ड की महारानी के महल बकिंघम पैलेस से कुछ कम नहीं थी। इन चूहों के कारण चेयरमैन बेहद परेशान थे। दूर-दराज़ के देशों से आया सारा माल बन्दरगाहों पर उतरता। जब तक कि माल ट्रकों, ट्रेनों और ठेलों में लदकर चला न जाता तब तक उसकी सारी ज़िम्मेदारी चेयरमैन की होती। इसलिए जो कुछ भी चूहे खाते उसका सारा हरजाना चेयरमैन को भुगतना पड़ता। उसने लन्दन के सबसे मशहूर चूहे पकड़ने वालों को बुलाया। परन्तु वह भी सौ-दो सौ चूहे ही पकड़ पाए। इसका कारण था कि यह चूहे बेहद चालाक किस्म के थे। इन चूहों का एक राजा था जो ज़मीन के अन्दर एक बहुत गहरे बिल में रहता था। बाकी चूहे उसके खाने के लिए एक से बढ़ कर एक स्वादिष्ट पकवान लाते थे। उसके लिए स्विटज़रलैण्ड की क्रीम-चॉकलेट, फ्रांस से आए मीट के व्यंजन और अलजियर्स से आए पके खजूर लाए जाते थे। सभी चूहे अपने राजा का आदेश मानते और उसके बताए अनुसार काम करते। अगर कोई चूहा कभी पिंजड़े या चूहेदानी में पकड़ा जाता तो राजा के विशेष दूत बाकी चूहों को इस खतरे से आगाह कर देते। राजा के पास दस हज़ार बहादुर और शेरदिल चूहों की एक फौज थी। यह सेना किसी भी जानवर से मुकाबला लेने की हिम्मत रखती थी। एक कुत्ता आराम से एक-दो चूहों को तो मार सकता है। लेकिन अगर उस पर एक साथ सौ चूहे हमला कर दें, तो शायद वह तीन-चार को ही मार पाएगा और अंत में खुद ही शहीद हो जाएगा। जिन चूहों के सबसे पैने दांत थे उन्हें खासतौर पर इंजीनियर बनने की ट्रेनिंग दी जाती थी। ये चूहे

अपने पैने दांतों से किसी भी चूहेदानी या पिंजड़े के तारों को काट कर चूहों को मुक्त कराते।

एक महीने के अन्दर इन चूहों ने एक सौ इक्यासी बिल्लियों और उनचास कुत्तों को मौत के घाट उतारा। बहुत से कुत्ते-बिल्लियां इतने ज़ख्मी हुए, कि अगर उन्हें दूर से चूहे की खुशबू भी आती तो वह डर के मारे भाग लेते। उन्होंने सात सौ बयालिस चूहों को छह सौ अठारह चूहेदानियों में से मुक्त कराया था। इसका नतीजा यह हुआ कि चूहे पकड़ने वालों ने चूहे पकड़ने का धंधा ही छोड़ दिया।

कैमिस्ट की दुकान से अलग-अलग किस्म के 'चूहा मार ज़हर' लाए गए और उन्हें खाने की चीज़ों में मिलाकर बन्दरगाह में फैलाया गया। राजा चूहे ने तुरन्त आदेश दिया, "चूहे केवल वह खाना खाएं जो सीधे बोरे, डिब्बे या ड्रम से निकला हो।" इसका असर यह हुआ कि केवल वही चूहे मरे जिन्होंने राजा की बात नहीं मानी। कुछ चूहों ने तो इन अराजक चूहों की मौत पर खुशी मनाई। कुत्तों, बिल्लियों, पिंजड़ों, चूहेदानियों की तरह ही ज़हर भी चूहों को मारने में बेअसर रहा।

इस सबसे चिंतित होकर लन्दन पोर्ट अथॉरिटी के चेयरमैन ने एक बड़ी मीटिंग बुलाई। इसमें उसने सबसे पूछा, "इन चूहों पर काबू पाने के लिए आप लोग कोई सुझाव दीजिए।" वाइस-चेयरमैन ने इसके लिए अखबार में एक इश्तहार निकालने का सुझाव दिया।

अगले हफ्ते सारे अखबारों में यह इश्तहार छपा। इश्तहार पूरे पन्ने का था और एकदम मोटे-मोटे अक्षरों में छपा था। जिससे इंग्लैण्ड के सभी नागरिक उसे पढ़ पाएं। मिस्टर स्मिथ के परिवार के सभी लोगों ने उसे चाव से पढ़ा। केवल नानी मटिल्डा ही उसे नहीं पढ़ पाईं। वैसे भी नानी कभी अखबार पढ़ती ही नहीं थीं क्योंकि वो सारी खबरें रेडियो पर ही सुन लेती थीं।

इस इश्तहार के सामने अखबार में छपी बाकी प्रतियोगिताएं एकदम बचकानी दिखती थीं। लन्दन पोर्ट अथॉरिटी के चेयरमैन ने बन्दरगाह को चूहों से मुक्त कराने वाले व्यक्ति को एक लाख पौंड का पुरस्कार देने की घोषणा की थी। साथ में चेयरमैन ने अपनी इकलौती लड़की की शादी भी उस आदमी से करने का वादा किया था। (अगर आदमी पहले से ही शादी-शुदा हुआ तो उसे दुबारा शादी की अनुमति नहीं मिलेगी। तब उसकी

पत्नी को हीरे का एक कंगन भेंट किया जाएगा)। इश्तहार में एक लाख पौंड का एक चित्र था, और वे सब सोने की मोहरें थीं, न कि कागज़ के नोट। साथ में चेयरमैन की लड़की का फोटो भी छपा था। वह देखने में बेहद सुन्दर थी। उसके बाल सुनहरे और घुंघराले थे और आंखें नीली थीं। वह वायलिन बजाती थी और उसने तैराकी और स्केटिंग में कई इनाम जीते थे।

प्रतियोगिता में अगर कोई गड़बड़ बात थी, तो वो यह थी कि इसमें भागीदार को चूहे मारने का सारा ताम-झाम खुद लाना था। प्रतियोगिता में भाग लेना इस वजह से एक महंगा कारोबार बन गया था। इसके बावजूद सैकड़ों-हज़ारों लोगों ने इसमें अपना भाग्य आज़माया। अगली सुबह चेयरमैन के पास इतनी सारी चिट्ठियां आईं कि उनको ले जाने के लिए तीन अतिरिक्त डाकियों की ज़रूरत पड़ी। चेयरमैन को इतने लोगों ने टेलीफोन किया कि अंत में गर्म होकर टेलीफोन के तार ही गल गए। अगले कई महीनों तक तमाम लोग अपना भाग्य आज़माते रहे। कैमिस्ट, जादूगर, वैज्ञानिक, प्राणीशास्त्री, साधू-महात्माओं से लेकर इसमें शेर के शिकारी तक शरीक थे। परन्तु कोई भी महारथी चंद चूहों को मारने के अलावा और अधिक कुछ न कर सका। इन लोगों की दखलन्दाज़ी के कारण जहाज़ों में से माल उतारने में बाधा पड़ने लगी। इस वजह से बहुत सारी मक्का को लन्दन की बजाए अन्य बन्दरगाहों से विदेश भेजना पड़ा।

भाग्य आज़माने वालों में जिम, चार्ल्स और जैक स्मिथ भी शामिल थे। जिम ने एकदम साधारण-सी दिखने वाली चूहेदानी बनाने की सोची। वह जैसे स्कूल में मास्टरों को फंसाता था, उसने वैसे ही चूहों को फंसाने की ठानी। उसे बन्दरगाह के आस-पास टीन के तमाम पुराने डिब्बे फैले हुए दिखाई पड़े। इन्हीं डिब्बों से उसने एक विशेष प्रकार की चूहेदानी बनाई। चूहे डिब्बे के अन्दर की खुशबू सूंघ कर उस पर कूदेंगे ही। परन्तु टीन के ऊपरी हिस्से में तो चूहेदानी का दरवाज़ा था। उसमें से चूहा अन्दर तो चला जाएगा लेकिन वह फिर बाहर नहीं निकल पाएगा। जिम अपने सारे खाली समय में डिब्बों की चूहेदानियां बनाता रहता। इसके लिए उसने अपने पिता से दस पौंड का कर्ज़ भी लिया। टीन के डिब्बे बनाने वाले एक बेरोज़गार मिस्त्री को भी उसने चूहेदानियां बनाने के काम में लगा लिया था। कुल मिलाकर उन्होंने एक हज़ार तीन सौ चौरानवे चूहेदानियां बनाईं। इनमें से सत्रह में कुछ नुक्स रह गया, इसलिए उन्हें छोड़ दिया गया।

जिम ने सारी चूहेदानियों को अपने पिता के सब्ज़ी के ठेलों पर लादा और वाइस-चेयरमैन से मिलने को चल दिया। वाइस-चेयरमैन ही चूहा उन्मूलन अभियान की देख-रेख कर रहे थे। उन्होंने कहा, "इतनी चूहेदानियां सभी बन्दरगाहों के लिए तो पर्याप्त नहीं होंगी। इसलिए पहले हम इन्हें केवल एक ही बन्दरगाह में ट्राई-आउट करके देखेंगे।" इसके लिए 'वेस्ट-इंडिया' नाम का बन्दरगाह चुना

गया। यहां पर जमैका और उसके आस-पास के द्वीपों से जहाज़ आते थे। वे अपने साथ-साथ चीनी, रम, शीरा और केले लाते थे। यहां के चूहे तेज़-तर्रार और बड़ी होशियार किस्म के थे। शीरे के ड्रमों और कनस्तरों में से अन्दर-बाहर आना उनका रोज़ का खेल था। कभी-कभी कुछ मंदबुद्धि और धीमी चाल वाले चूहे शीरे में फंस जाते और वहीं मर जाते। केवल तेज़ छलांग लगाने वाले और होशियार चूहे ही बचते। इसलिए यहां के चूहे कूदने-फलांगने में काफी उस्ताद थे।

जिम ने आधी चूहेदानियों में पनीर और बाकी में मीट के टुकड़े रखे। पहली रात को नौ सौ अट्ठारह चूहे पकड़े गए। इससे जिम बड़ा खुश हुआ और उसे लगा कि अब वह इनाम ज़रूर जीत जाएगा। पर दूसरी रात सिर्फ तीन चूहे ही पकड़े गए और तीसरी रात केवल दो। राजा चूहे ने सभी चूहों को टीन के डिब्बों से बचने की चेतावनी दे दी थी। इसलिए केवल बेवकूफ और आज्ञा न मानने वाले ही चूहे पकड़े गए। चौथी रात चूहेदानियों को विक्टोरिया बन्दरगाह में ले जाया गया। वहां भी केवल चार चूहे ही पकड़ में आए। राजा चूहे की चेतावनी दूर-दराज़ तक फैल चुकी थी। जिम कुछ खास कर नहीं सकता था। वह मुंह लटकाए घर लौट आया। समय बर्बाद करने के साथ-साथ उसने अपने पिता के दस पौंड भी लुटा दिए थे। स्कूल के शरारती लड़के जिम को 'टीन का चूहा' कह कर चिढ़ाने लगे।

चार्ल्स स्मिथ की योजना कुछ अलग ही थी। उसने एक ऐसे ज़हर का आविष्कार किया जिसमें न तो कोई स्वाद था और न ही कोई खुशबू। मैं आपको उसे बनाने का तरीका नहीं बताऊंगा। क्योंकि हो सकता है कि कोई हत्यारा इस कहानी को पढ़कर, उस ज़हर से कुछ लोगों को खत्म कर दे। चार्ल्स ने इस ज़हर को काफी मात्रा में बनाया। उसने कई रसायनों को मिलाकर एक ऐसा पदार्थ बनाया जिसमें 'राकफोर्ट पनीर' की खुशबू आती थी। सभी लोग जानते हैं कि राकफोर्ट पनीर फ्रांस का सबसे मशहूर पनीर है।

इस रासायनिक पदार्थ का नाम मिथाईल हेप्टाडेसाइल कीटोन है और उसमें से एकदम पनीर की खुशबू आती है। कुछ लोगों को चाहे यह सुगन्ध नापसंद हो परन्तु चूहों को इस खुशबू से बेहद प्यार है। चार्ल्स ने अपने पिता से बीस पौंड उधार लिए और उनसे वह बहुत सारा सस्ता और घटिया किस्म का पनीर खरीद लाया। पहले उसने पनीर को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटा। फिर उन टुकड़ों को ज़हर में डुबोया और उन पर राकफोर्ट पनीर वाली खुशबू छिड़की गई। इन टुकड़ों को दस हज़ार गत्ते के डिब्बों में रखा गया। उसने सोचा कि अगर टुकड़ों को ऐसे ही खुले में बिखरा दिया गया, तो शायद चूहे उन पर शक करें। लेकिन डिब्बे में पैक किए पनीर के ज़हरीला होने पर कौन चूहा शक करेगा! डिब्बे पतले गत्ते के बने थे जिससे चूहे आसानी से घुस सकें।

पूरे दिन भर दो आदमी, ठेलों पर उन डिब्बों को लाद-लाद कर बन्दरगाह
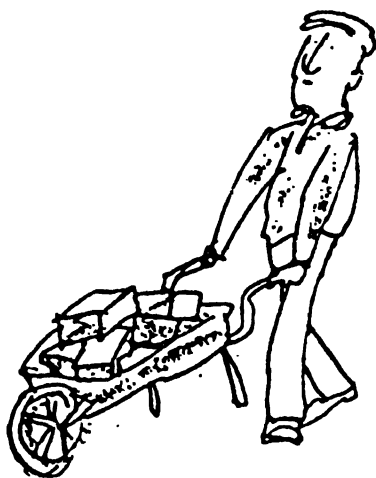
के कोने-कोने में उन्हें फैलाते रहे। चार्ल्स उनके पीछे-पीछे जाता और उन डिब्बों पर पनीर की खुशबू वाला पदार्थ छिड़कता रहता। उस दिन तो लन्दन का समस्त पूर्वी भाग पनीर की खुशबू से महक रहा था। सूरज ढलने के बाद चूहे अपने बिलों से निकले और उन्होंने एक-दूसरे से कहा, "यह तो कोई गज़ब का पनीर मालूम होता है। इसके एक छोटे-से डिब्बे की खुशबू, एक पेटी भर साधारण पनीर को मात करती है।" चूहों ने जम कर पनीर खाया। वह कुछ पनीर राजा चूहे के भोज के लिए भी ले गए। यह राजा चूहे की खुशकिस्मती थी कि उसने तब ही पेट भर कर बादाम और अखरोट खाए थे।

उसके पेट में बिल्कुल जगह नहीं थी। ज़हर को असर करने में कुछ समय लगा और सुबह तीन बजे से चूहों के मरने का सिलसिला जारी हुआ। राजा चूहे का शक एक दम पनीर पर गया। उसने अपने दूतों द्वारा पनीर न खाने का संदेश सारे चूहों में फैलवाया।

एक चूहा बहुत ज़ालिम किस्म का था। अपने खुद के बच्चों को खाने के इल्ज़ाम में उसे मौत की सज़ा हो चुकी थी। राजा चूहे ने उसे थोड़ा-सा ज़हरीला पनीर खाने का आदेश दिया। थोड़ी ही देर में वह चूहा मर गया। इससे पनीर का ज़हरीला होना एकदम सिद्ध हो गया। अब राजा ने और दूतों के ज़रिए अपना संदेश भिजवाया। अगले दिन सुबह चार हज़ार पांच सौ चौदह मरे हुए चूहे पाए गए। तमाम चूहे बिलों में ही मरे पड़े थे। कई चूहों की तबियत काफी खराब थी। चेयरमैन यह देख कर बेहद खुश हुए और उन्होंने चार्ल्स को और पनीर खरीदने के लिए पैसे दिए। परन्तु दो दिन बाद आठ हज़ार डिब्बों में से मात्र दो डिब्बों को खुला पाया गया। मामला साफ था। चूहे, आदमियों के मुकाबले ज़्यादा चालाक निकले। चार्ल्स बेहद दुखी हुआ। वह जीतेगा ही, उसे इस बात का पक्का

विश्वास था। इस उम्मीद में उसने शादी की अंगूठी का ऑर्डर दे दिया था और चर्च के पादरी को शादी करवाने के लिए पत्र भी लिख दिया था। उसने सुनार और पादरी को दुबारा पत्र लिखे कि उसने अब शादी करने का इरादा बदल दिया है। सबसे खराब बात यह हुई कि पनीर की खुशबू उसकी चमड़ी के साथ महीना भर तक चिपकी रही। उसे स्कूल ने वापस लेने से इंकार कर दिया और घर में भी उसे कोयले की कोठरी में सोना पड़ा।

अंत में जैक ने अपनी योजना बनाई। इसमें खर्चा कुछ अधिक था। उसने अपने पिता से तीस पौंड का कर्ज़ लिया, लेकिन वह काफी न था। उसने कुछ वायरलैस-सेट मुझे बेचे, और कुछ पैसा मुझ से भी उधार लिया। धीरे-धीरे उसकी पैसों की ज़रूरत पूरी हुई। उसने ढेर सारा एकदम महीन लोहे का बुरादा खरीदा व आटे और चीनी में मिलाकर उनके बिस्कुट बनवाए। बिस्कुटों को बन्दरगाह में सभी जगह बिखरा दिया गया। शरू में तो चूहों ने उन्हें छुआ तक नहीं। परन्तु बाद में जब उन्हें बिस्कुटों में कोई नुकसान नहीं दिखा, तब उन्होंने खूब बिस्कुट खाए। इस बीच जैक ने सात विशालकाय विद्युत-चुम्बकों का जुगाड़ किया। इन्हें अलग-अलग बन्दरगाहों में रखा गया। हरेक बिजली के चुम्बक को एक गहरे गड्ढे में रखा गया। फिर बिजली के तार बिछाए गए, जिससे कि डिस्ट्रिक्ट रेल और लन्दन रेल के बिजली करन्ट से, चुम्बकों को चालू किया जा सके। रेल्वे का इलेक्ट्रिकल

संयोगवश जैक का दोस्त निकला। दोनों की वायरलैस में गहरी रुचि थी। दोस्ती के कारण जैक को रेल्वे से बिजली उधार लेने में दिक्कत नहीं हुई। जब चूहों ने लोहे का ढेर सारा बुरादा खा लिया तभी चुम्बकों में से करन्ट बहाया गया। उसके पहले लोहे, स्टील और निकिल की सभी चीज़ों को बांध दिया गया। क्योंकि सारे जहाज़ लोहे के बने होते हैं इसलिए उन्हें मोटे रस्सों से कस कर बांध दिया गया। उस रात बन्दरगाह पर ड्यूटी पर आए सभी कर्मचारियों को विशेष प्रकार के, बिना कीलों वाले, जूते पहनने पड़े। वाइस-चेयरमैन की बात अलग थी – वह ड्यूक था, इसलिए उसके जूतों में सोने की कीलें लगी थीं।

आधी रात के बाद करीब डेढ़ बजे के करीब लन्दन की सभी अन्डरग्राऊंड ट्रेनों की ड्यूटी खत्म हुई। तब बिजली का सारा करन्ट जो ट्रेनों को खींच रहा था उसे पहले विद्युत चुम्बक में बहाया गया। पहले तो कुछ जंग लगी कीलें और टीन के डिब्बे ही उसकी ओर आकर्षित हुए। फिर कुछ चूहे भी आ चिपके। जिन चूहों के पेट लोहे के बुरादे से भरे थे, वे चुम्बक की ओर खिंचे चले आए। और थोड़ी ही देर में चुम्बक वाला गड्ढा चूहों से खचाखच भर गया। पहला गड्ढा भर जाने के बाद करन्ट को दूसरे चुम्बक में छोड़ा गया। इसी तरह एक के बाद एक करके सभी चुम्बकों में करन्ट छोड़ा गया। पहले तो केवल वही चूहे जो अपने बिलों से बाहर थे चुम्बक की चपेट में

आए। परन्तु हरेक चुम्बक में थोड़ी-थोड़ी देर बाद दुबारा करन्ट बहाया गया। अब जैसे-जैसे चूहे बिलों से बाहर निकलते वे झट से चुम्बकों द्वारा पकड़ लिए जाते। धीरे-धीरे बहुत सारे चूहे पकड़े गए।

चूहों के राजा को इस गड़बड़ी का आभास हो गया। उसको लगा कि वह खुद बिल की एक दीवार की ओर खिंचा जा रहा है। उसने अपने दूतों को स्थिति की जानकारी लेने बाहर भेजा। लेकिन वे दूत दुबारा वापस ही नहीं आए। अंत में वह हालचाल जानने के लिए खुद ही बाहर निकला। उसे तुरन्त ही एक चुम्बक ने खींच लिया। सुबह होते ही सारे गड्ढों में लबालब पानी भर दिया गया, जिससे कि सारे चूहे डूब कर मर जाएं। मरे चूहों को जब तौला गया तो उनका भार करीब एक सौ पचास टन निकला। किसी ने मरे चूहों को गिना तो नहीं, परन्तु एक अनुमान के अनुसार करीब साढ़े सात लाख चूहे पकड़ में आए।

चूहा-पकड़ो अभियान के दौरान कुछ दुर्घटनाएं भी हुईं। रात की ड्यूटी पर आया एक चौकीदार बिना कीलों वाले जूते पहनना भूल गया। वह पैरों के बल चुम्बक की ओर खिंचता हुआ चला गया। गड्ढे के पास आते-आते उसने किसी तरह अपने जूते तो उतार दिए। फिर भी उसकी पैरों की उंगलियों से दो चूहे लटके रह गए। चूहों को चुम्बक ने इतनी ताकत से खींचा कि चौकीदार की उंगलियां टूट कर चूहों के साथ चुम्बक से जा चिपकीं। वह चौकीदार अब छोटे साइज़ के जूते पहनता है। दूसरे चौकीदार की किस्मत कुछ अच्छी रही। महायुद्ध से पहले वह बिलियर्ड का एक अच्छा खिलाड़ी था। परन्तु लड़ाई के दौरान उसके सिर में कुछ लोहे के छर्रे घुस गए थे। बहुत कोशिशों के बाद भी कोई डाक्टर उन छर्रों को निकाल नहीं पाया। इस वजह से
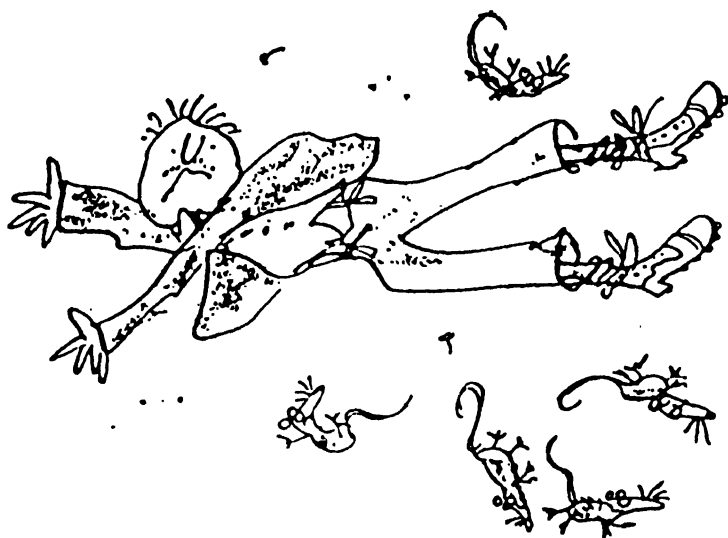
वीरता और साहस के लिए प्रसिद्ध थे अमेरिका के 'सू' आदिवासी। गर्व और आत्मविश्वास से भरे एक 'सू' आदिवासी का यह चित्र 1837 में बनाया गया था। इस दौर में 'सू' श्वेतों के संपर्क में आ रहे थे।

थीं। कक्षा के बाद उनके पास पहली बार पूछने के लिए ढेर सारे सवाल थे। रोज़ली खुश भी हुई और हैरान भी।

वैक्स दम्पति जल्द ही समझ गए कि जब भी वे आदिवासी सभ्यता को संजीदगी से लेते, चाहे उसकी निन्दा ही क्यों न कर रहे हों, अन्यथा सुस्त उन्हीं आदिवासी छात्रों में उत्साह और जोश झलक उठता था। ऐसा लगा कि जैसे ज़िन्दगी में पहली बार किसी ने उनकी संस्कृति को अंधविश्वासी और पिछड़ा न कह कर, उसे सार्थक ठोस मानकर उनसे बात की थी।

इसके बाद रोज़ली और मर्रे सोचने पर मजबूर हो गए। वे जानते थे कि आदिवासियों का इतिहास गोरों के हाथों किए गए नरसंहार से भरा था। जिस कौम की आबादी एक करोड़ से ऊपर हुआ करती थी, उसकी जनसंख्या गोरों के अत्याचार, शोषण और उनके द्वारा फैलाई गई बीमारियों के कारण 1890 ई. में ढाई लाख भी नहीं रह गई थी। हज़ारों साल पहले एशिया से आकर बसे इन लोगों की ज़मीनें यूरोप के बाशिन्दों ने बन्दूक की नोक पर हड़प लीं, और इन्हें छोटे-छोटे सीमित क्षेत्रों में रहने के लिए मजबूर किया। उनकी अर्थव्यवस्था को ध्वस्त कर दिया गया और उन की सभ्यता को बिखेर दिया गया था।

शोषण: बच्चों पर असर

क्या आदिवासी घरों में जन्मे बच्चों पर अभी भी ऐतिहासिक शोषण का इतना असर था कि अमेरिकी तालीम में उन की परायों जैसी स्थिति थी? इस सवाल का जवाब सिर्फ एक तरीके से मिल सकत

अमेरिका का नक्शा और 'सू' कबीले की रिहाइश की हद: ऊपर बिन्दुओं से बनी अर्ध गोलाकार रेखा से जो हिस्सा घिरा है, पहले 'सू' आदिवासियों का इलाका था। 1868 में उन्हें 'आरक्षित पाइन रिज' में सिमटा दिया गया।
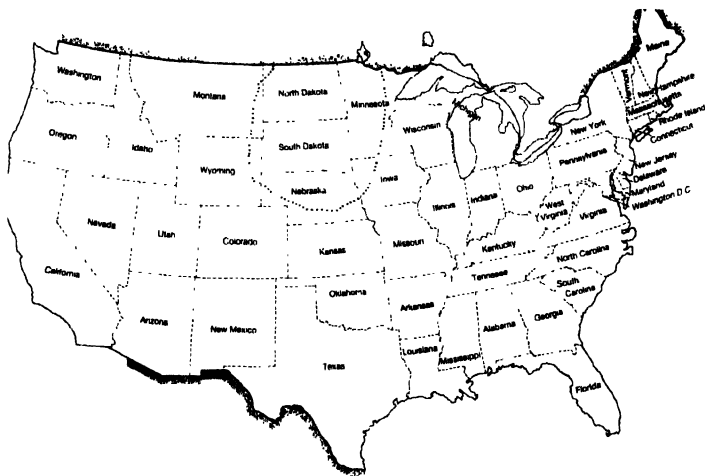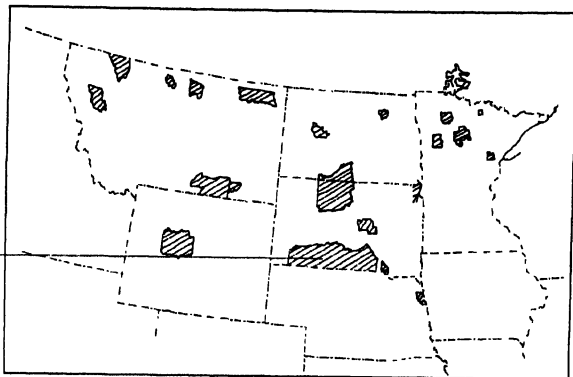
था। रोज़ली और मर्रे ने आदिवासियों के लिए चलाए गए विद्यालयों का अध्ययन करने का निश्चय किया।

उन्होंने छुट्टियों में 'सू' आदिवासियों की बस्ती में जाना शुरू किया। यह बस्ती अमेरिका के साऊथ डैकोटा प्रांत में स्थित, 'पाइन रिज रिज़रवेशन' का हिस्सा थी। रिज़रवेशन का अमेरिका में मतलब

वाइसन का शिकार: 'सू' बाइसन पर बहुत हद तक निर्भर थे। एक समय में खुले मैदानों में बाइसन के ढेरों झुंड थे। लेकिन फिर अमेरिकी फौज ने इन्हें लाखों की तादाद में ज़मीन और खाल के लिए मार दिया। इस तरह से आदिवासियों की तो कमर ही टूट गई।
वाइसन का पीछा करते घोड़े पर सवार 'सू' आदिवासी का यह चित्र 1832 में जॉर्ज केटलिन नाम के चित्रकार ने बनाया था। केटलिन पेशे से एक वकील थे लेकिन बाद में पेंटर बन गए।

आरक्षण ही है, परन्तु रेल या कॉलेज की सीटें नहीं, बल्कि रहने का स्थान। सन् 1868 ई. में अमेरिकी सेना ने 'सू' कबीले को एक समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया था। जिसके तहत वे अपनी सारी ज़मीनों को त्याग, इस छोटे से आरक्षित क्षेत्र में सीमित रह गए थे। (नक्शों में गोरों के पहले आगमन के समय 'सू' की हदें, और आज के रिज़रवेशन दिखाए गए हैं।) समझौते में किए गए वादे अमेरिकी सरकार ने खुद ही तोड़ने शुरू कर दिए और 1890 तक यहां फौज और आदिवासियों के बीच झड़पें होती रहीं। अमेरिकी इतिहास की सबसे घिनौनी वारदातों में से एक यहीं गुज़री जब 'पाइन रिज' में बून्डेडनी नामक जगह पर फौजियों ने 300 से अधिक 'सू' आदमियों, औरतों और बच्चों को भून डाला था।

अब इन्हीं 'सू' के लिए गोरों द्वारा विद्यालय चलाए जा रहे थे जहां उन्हें 'सभ्य' बनाया जा रहा था और उन्हें 'मुख्य धारा' में लाए जाने की कोशिश की जा रही थी।

रोज़ली और मर्रे 'सू' का इतिहास बखूबी जानते थे और मानते थे कि उन के साथ बहुत ज़्यादती हुई है। 'पाइन रिज रिज़रवेशन' में उन्होंने जो हाल देखा उस से उन्हें और भी दुख हुआ। जो कौम पूरे अमेरिका में सब से खुद्दार

होने का दावा किया करती थी, वही अब सरकार से दिए गए भीख समान राशन पर गुज़ारा कर रही थी। सिर्फ 100 वर्ष पहले यहां के नौजवान घोडों पर सवार बाइसन नामक जंगली भैंसे का शिकार करके सारे कबीले का पोषण करते थे। खुले मैदानों में घूमते बाइसन के विशाल झुंड उन के समाज के आधार स्तम्भ थे। मांस, खाल, पिंजर, अंतड़ी सभी प्रयोग में आते। उन का भोजन, उन का पहनावा, उनका तम्बुनुमा घर, यहां तक कि उनके माज़ और बच्चों के खिलौने भी बाइसन के शरीर से ही बनते थे। वे कभी व्यर्थ में बाइसन पर हाथ न उठाते, जितनी ज़रूरत थी, उतने ही मारते। प्रकृति में उनका और बाइसन का इस विशाल क्षेत्र में संतुलन-सा बना हुआ था।

फिर अमेरिकी फौज ने बाइसन के चारागाह छीन लिए और अपने यूरोप से आए बाशिन्दों को बांट दिए। बाइसन की खाल को बाज़ार में बेचने के लिए उन्हें लाखों की गिनती में मार डाला। जिस देश में बाइसन के झुण्डों से धरती कांपती थी और मिट्टी उड़कर सूरज को छुपा लेती, वहां आज सिर्फ मुट्ठी भर बाइसन बचे हैं।

.... कहां गई वो संस्कृति

समझौता किया गया था कि रिज़रवेशन में बंद 'सू आदिवासियों' को अमेरिकी सरकार भोजन का सामान दिया करेगी। फिर उन्हें तम्बुओं के लिए कपड़ा भी देना पड़ा और अन्य वस्तुएं भी। जिस कौम ने हज़ारों साल बाइसन के साथ एक साझा जीवन व्यतीत किया था, उस की तो जड़ें ही उखड़ गईं। पेट तो भर गया परन्तु उन गीतों का क्या होता जो

अब यहां, ऐसे रहते हैं: आरक्षित क्षेत्रों में बने 'सू' आदिवासियों के घर। एक समय की सबसे खुद्दार कौम को किन हालातों में रहना पड़ रहा है, बहुत कम अमेरिकियों को इसकी जानकारी है।

ऊपर भालू नृत्य और नीचे खोपड़ी नृत्य

शिकार पर निकलते समय गाए जाते? और उन नृत्यों का क्या जिस में सब से वीर योद्धा बाइसन के भेष में नाचता? या उन सू सयानों का जो बाइसन की खाल पर कबीले का इतिहास तस्वीरें बना कर अंकित करते?

'सू' की अपनी संस्कृति तो एक खंडहर में तब्दील हो चुकी थी, और उसकी जगह कोशिश की जा रही थी कि मध्यम वर्गीय गोरे अमेरिकियों की संस्कृति उनपर थोपी जाए।

100 वर्ष से अधिक समय से यहां विद्यालय चलाए जा रहे थे, जिनका एक ही मकसद था: सू को 'सभ्य' बनाना। अर्थात विजयी (हमलावर) कौम के गीत, रीति-रिवाज़, धर्म, भाषा, इत्यादि सिखाना। वीर जांबाज़ 'सू' की अपनी संस्कृति या रिवाज़ की इज़्जत करना तो क्या उसे समझने की भी कोशिश नहीं की जाती।

शिक्षकों से बात करके पता चला कि वे 'सू' बच्चों से बहुत निराश थे। न तो वे विद्यालय की पढ़ाई में रुचि रखते थे और न ही गीतों या कहानियों में। इस की वजह पूछी जाने पर शिक्षक का जवाब स्पष्ट था – 'सू' बच्चे पिछड़े हुए और मूर्ख थे।

परन्तु रोज़ली और मर्रे का निष्कर्ष कुछ और था। उन्होंने देखा कि सभी अध्यापक बाहर के थे, यहां तक कि उन में से बहुत कम ऐसे थे जो कि 'सू' की मातृभाषा समझ सकते। जिन गुणों को वे अच्छे छात्र के गुण कहते थे, वे एक मध्यम वर्गीय गोरे प्राटेस्टेन्ट धर्म के छात्र में ही मिलते थे। अध्यापक मानकर चलते थे कि ये गुण किसी भी छात्र में आराम से डाले जा सकते हैं। मर्रे और रोज़ली का मत था कि शिक्षक यह भूल जाते हैं कि कोई भी बच्चा शून्य में नहीं रहता। उसके अपने समाज, मित्रों, कुटुम्ब आदि का उस पर गहरा असर होता है और विद्यालय उसके अपने इन अनुभवों को काटने की कोशिश कर रहे थे।

'सू' कबीले के अपने समाज और जीवन के नज़रिए से बच्चों को विद्यालय की गतिविधियों में कोई मतलब नहीं दिखता था। न ही शिक्षक द्वारा सिखाए जाने वाले गाने और कहानियों में उन्हें कोई अपनापन लगता। अपनी कहानियां

अब कहां वो नृत्य और गीत: *वीरता और शौर्य के लिए प्रसिद्ध 'सू' लोगों की जीवनशैली से संगीत और नृत्य बेहद जुड़ा हुआ था। उनके ऐसे ही दो नृत्यों को जॉर्ज केटलिन ने चित्रित किया।*

शिकार पर जाने से पहले: *भालू के शिकार पर जाने से पहले भावी शिकारी कई-कई दिनों तक नाचते थे। इस नृत्य का नेतृत्व मुख्य ओझा करता था। वो भालू का भेष बनाता था। इसके अलावा भी कई लोग भालू के सिर का मुखौटा पहने रहते थे। सब लोग मिलके एक गोल घेरे में नाचते थे।*

खोपड़ी नृत्य: *इसी तरह उनका एक दूसरा नृत्य था, खोपड़ी नृत्य जिसमें नाचते-नाचते सूरवीर 'सू' लगभग उन्माद की स्थिति में पहुंच जाते थे।*

केटलिन ने उस समय आदिवासियों की ज़िंदगी को चित्रित किया जबकि अन्य गोरे लोग इन इलाकों से बहुत कम परिचित थे।
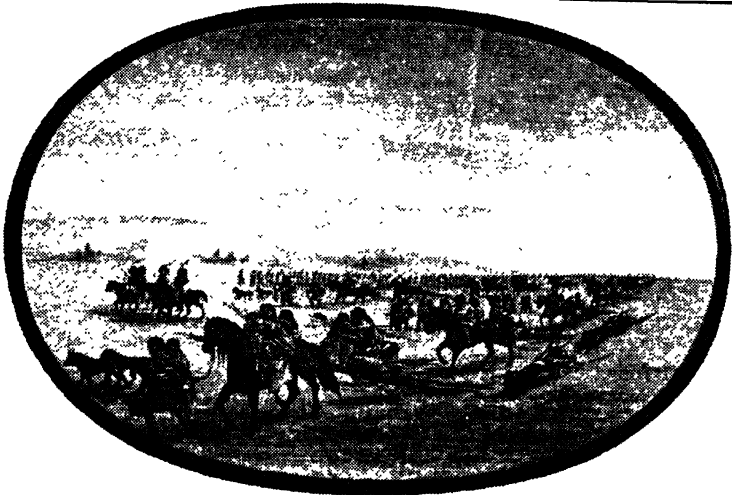
एक जगह से दूसरी जगह जाता 'सू' का कारवां।

और गीत तो वे पहले से सुनते आ रहे थे, इसलिए ये नए किस्से-कहानियां अजीब से लगते थे।

शिक्षक यह सब कुछ नहीं समझते थे। छात्र कक्षा में रुचि नहीं दिखा रहे, इसका उन के लिए एक ही मतलब था कि वे मूर्ख थे। इससे शिक्षकों की यह मान्यता कि 'सू' पिछड़े हैं और ज़्यादा गहरी होती जाती और यही बात 'सू' संस्कृति की कक्षा में चर्चा करते हुए वे दोहराते।

बच्चे भली-भांति समझते थे कि शिक्षकों का उनके और उनके समाज के प्रति क्या नज़रिया था। कक्षा में उन्हें स्पष्ट रूप से, और उसके साथ कई अन्य अस्पष्ट तरीकों से यह बतलाया जाता कि उनका कबीला 'घटिया और पिछड़ा' है। सामाजिक तौर पर तो 'सू' ने अपनी बेइज़्ज़ती बहुत पहले से कुबूल कर ली थी। लेकिन बच्चों का विरोध एक अलग रूप लेता था – कक्षा में खामोश बैठने का। शिक्षक की लाख कोशिशों के बावजूद बच्चे सवालों का जवाब देने या अन्य गतिविधियों में हिस्सा लेने से बचते थे।

रोज़ली और मर्रे का दावा था कि बच्चों की रुचि न लेना मूर्खता नहीं थी, बल्कि उन पर थोपी जा रही एक संस्कृति का विरोध था। उन्होंने कई बार देखा कि अगर कोई बच्चा प्रश्न का उत्तर दे देता तो आधी छुट्टी में उस के सहपाठी उससे लड़ते और उसे डांटते। अपनी सामाजिक ज़िल्लत के बारे में वे चाहे और कुछ न कर पाएं, रूठ तो सकते ही थे।

ऐसा ही था नकल का मामला। शिक्षक चाहते थे कि छात्र परीक्षा में जवाब स्वयं दें, बिना किसी से मदद लिए। लेकिन 'सू' समाज की रीत थी कि हर काम इकट्ठा किया जाए – शिकार, गाना,

तम्बू बनाना .....। परिस्थितियां बदल गई थीं परन्तु वह सामूहिकता अभी भी बुलन्द थी। अगर मित्र दुविधा में हो तो कोई साथी छात्र कैसे मौन रहे। और फिर यह एक तरीका भी था अपने को ऊंचा समझने वाले शिक्षकों को ठेंगा दिखाने का।

इस अध्ययन के आधार पर मर्रे और रोज़ली ने जो लेख लिखे वे काफी प्रभावशाली रहे। उनका सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष था कि बच्चों को शून्य में देखना गलत है। ऐसी दृष्टि से ही शिक्षक उन्हें सिर्फ मूर्ख या होशियार कह सकते हैं। जबकि न सिर्फ बच्चों के समाज को समझने की ज़रूरत है, उस के साथ-साथ इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि विद्यालय और पाठ्यक्रम किस तरह के नज़रिए पर ज़ोर दे रहा है। तभी एक सार्थक विद्यालय रचाया जा सकता है, अन्यथा एक संस्कृति को दूसरे से 'ऊंचा' कह कर उसे दूसरे पर थोपे जाने का खतरा है।

उन दिनों (और अब भी) अमेरिकी आदिवासी अपने हक मांगने के लिए आंदोलन चला रहे थे। वैक्स दम्पति और इन जैसे कई अन्य विद्वानों के शोध ने आदिवासियों की शिकायतों के ठोस सबूत दिए। 1969 में सरकार की एक कमेटी ने स्वीकार किया कि, 'आदिवासियों के लिए चलाए विद्यालय एक राष्ट्रीय स्तर की त्रासदी थे।' 1972 के बाद कई सुधार किए गए। विद्यालय के पाठ्यक्रम और संचालन में आदिवासियों को हिस्सेदारी दी गई। आदिवासी संचालित कॉलेज स्थापित किए गए। सुधार हुआ, परन्तु अभी भी बहुत कुछ रहता है करने के लिए। समस्या सामाजिक है और उसका हल सिर्फ विद्यालयों में नहीं हो सकता। 'सू' और अन्य आदिवासियों की आर्थिक और सामाजिक समस्याओं को लेकर संघर्ष अभी भी जारी है।

'सू' और अमेरिकी विद्यालय

अब फिर अपने शुरूआती सवाल पर लौटें। हां, विद्यालय की यह कोशिश ज़रूर है कि वह बच्चों को सभ्य और सुसंस्कृत बनाए, परन्तु सवाल तो यह है कि किसकी सभ्यता और किसकी संस्कृति? 'सू' विद्यार्थियों को विद्यालय लगातार यह कह रहा था कि उनका सारा रहन-सहन का ढंग, उनका इतिहास एक घटिया, मूर्ख कौम का था। उस की जगह गोरों की मध्यम वर्गीय संस्कृति को स्थापित करने की कोशिश चल रही थी।

कहते हैं कि सारी दुनिया का चक्कर लगाने के बाद इन्सान फिर अपने घर ही लौटता है और उसे नई नज़र से देख सकता है। आप भी विचार कीजिए कि भारत में कौन-सी परम्पराओं, सभ्यताओं, विचारों को विद्यालयों में चलाया जा रहा है?

अमन मदान: जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के विभाग में शोधरत।
कल्याणी डिके: दिल्ली में कार्यरत।

□□□

जोंक की अनोखी चाल

जोंक का नाम लेते ही मवेशियों और इंसानों से चिपक कर खून चूसने की न मालूम कितनी घटनाएं लोगों के मुंह से सुनी जा सकती हैं – और साथ ही लोग यह बताना भी नहीं भूलते कि किसी के बदन से चिपकी जोंक को निकालना आसान नहीं होता। बस नमक या फिर मिट्टी का तेल डालो तभी छोड़ती है पीछा।

कैसे खून चूसती है जोंक उसके बारे में बात करने से पहले आइए उसकी अनोखी चाल पर भी एक नज़र डाल लें। आपको शायद मालूम होगा कि जोंक के दोनों सिरों पर चूसक (Suckers) होते हैं। जोंक इन्हीं चूसकों को इस्तेमाल करके खून चूसती है, और चलती भी इनके सहारे है। आइए देखें कैसे. . .

1. आगे बढ़ने के लिए जोंक अपने पीछे के चूसक को ज़मीन पर चिपकाती है।
2. अब ये अपनी गोल-गोल मांसपेशियों के घेरे को कम करते हुए शरीर को आगे बढ़ाती है।
3. अपने आगे के चूसक को ज़मीन से चिपका देती है।
4. और पिछले चूसक को ज़मीन पर से ऊपर उठा लेती है।
5. अब शरीर को सिकोड़कर पीछे वाले चूसक को आगे लाती है। . . . . . और हर बार यह पूरी प्रक्रिया दोहराते हुए आगे बढ़ती जाती है।

खून चूसना

जोंक चिपकने के लिए शरीर के उस हिस्से को चुनती है जहां की खाल पतली हो। जैसे पेट, पैर की पिंडली आदि। आगे के चूसक में मौजूद नुकीले, ब्लेड जैसे जबड़े से यह अंग्रेज़ी के वाय (Y) अक्षर जैसा कट लगाती है और चूसक के सहारे खून चूसने लगती है।

साथ ही यह एक विशेष तरह का पदार्थ (हिरुडिन) अपने शिकार के शरीर में छोड़ती है। इस पदार्थ की विशेषता यह है कि यह खून को जमने नहीं देता और इसलिए जोंक आसानी से खून चूसती रहती है।

एक बार भर-पेट खून चूस लेने के बाद जोंक को कई-कई दिनों तक दुबारा खून चूसने की ज़रूरत नहीं पड़ती।
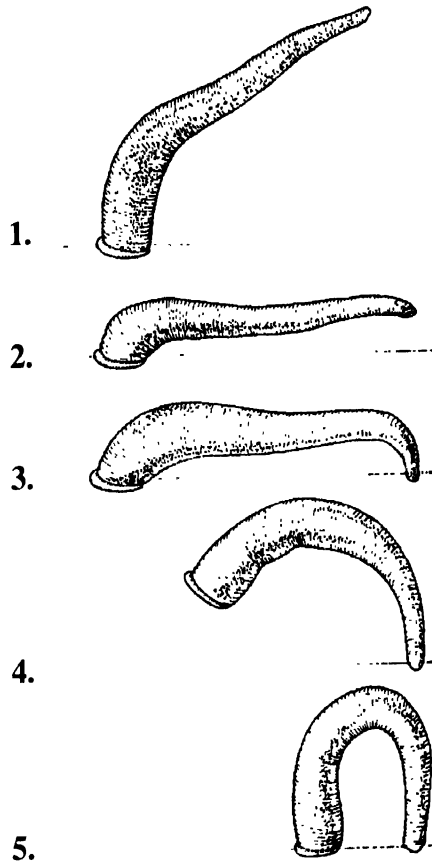
जोंक के चलने की प्रक्रिया। एक आदमी के हाथ में चिपकी जोंक। शुरुआत में और थोड़ी देर बाद (नीचे)।